Sept
2026

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

उस्वा–ए–रसूल (स0अ0व0)

"रसूल (स0अ0व0) आज हमारी ज़ाहिरी निगाह से ओझल हैं लेकिन "उस्वा–ए–रसूल" ओझल नहीं। वह क़दम जिन पर माथा रगड़ना हमारे लिए नेकी थी, आज हमारी नज़रों से ओझल हैं लेकिन "नक़्श–ए–क़दम" मौजूद हैं। साहिब–ए–खुल्क़–ए–अज़ीम आज "रफ़ीक़–ए–आला" की रिफ़ाक़त में हैं लेकिन "ख़ुल्क़–ए–अज़ीम" की अमानत इन्सानों के सीनों और कुतुबख़ानों के सफ़ीनों में आज भी महफ़ूज़ है। पयामबर का पयाम ज़िन्दा है, काम ज़िन्दा है, नाम ज़िन्दा है और आज ख़ाक़ का हर पुतला अपने ज़र्फ़ और बिसात के मुताबिक़ इस गंज–ए–नूर से कस्ब–ए–फ़ैज़ कर सकता है।"

— मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

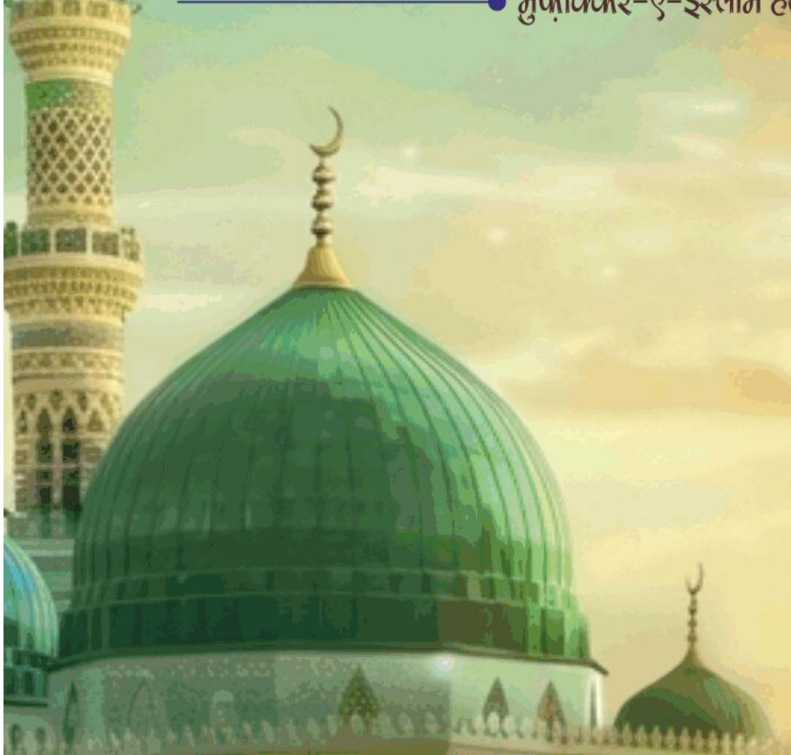

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

आलम-ए-इस्लाम से कुछ अहम गुज़ारिशें

असर–ए–हाज़िर के तनाज़ुर (वर्तमान परिपेक्ष) में आलम–ए–इस्लाम के लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी "दिफ़ाई सिनअत" (Defence Industry) में तरक़्क़ी है, ताहम दीगर सिनअती मैदानों में भी कमाल–ए–महारत हासिल करना ज़रूरी है ताकि हम जिन चीज़ों को बैरून–ए–मुल्क से इम्पोर्ट करने पर मजबूर हैं, उनकी सिनअतें हम खुद अपने मुल्क में क़ायम कर सकें। ख़ास तौर से "दिफ़ाई सिनअत" (Defence Industry) में ग़ैर–मामूली फ़न्नी कमाल, बारीक–बीनी और ऐसे आला दर्जे की जिद्दत व महारत दरकार है कि वह अपने मेयार और कारकर्दगी में दुनिया की दूसरी तरक़्क़ी–याफ़्ता क़ौमों की सिनअत से किसी तरह कम न हो बल्कि वह उनसे बढ़कर ही साबित हो। आज ज़रूरत है हवाई जहाज़, बमों और भारी टैंकों के बड़े–बड़े कारखाने निजी तौर पर बनाने की और अपनी फ़ौजों को जदीद–तरीन जंगी हिकमत–ए–अमली के मुताबिक़ ट्रेनिंग देने की और इसमें कोई शुब्हा नहीं कि हमें इस ख़्वाब को शर्मिन्दा–ए–ताबीर करने के लिए, पूरे आलम–ए–इस्लाम में फैली हुई बेशुमार मअदनी दौलत, मख़्फ़ी ख़ज़ाने और ग़ैर–मामूली क़ुदरती ज़ख़ाइर के होते हुए, दूसरों के सामने कासा–ए–गदाई लेकर खड़ा होने की क़तअन कोई ज़रूरत बाक़ी नहीं रहती।

दूसरी अहम और ज़रूरी बात यह है कि हमें अपने तिजारती और सिनअती ताल्लुक़ात मग़रिबी मोमालिक के बजाय मशरिक़ी मोमालिक के साथ इस्तिवार करने चाहिए और उनके साथ अपनी मसनूआत और अशिया का तबादला करना चाहिए। इसलिए कि मग़रिबी इस्तिमार के ख़िलाफ़ मशरिक़ ही हमारा हलीफ़ और दोस्त है और वह भी इसके पंजा–ए–जबर व इस्तिबदाद से निजात, ग़ुलामी की ज़ंजीरों से ख़लासी और अपना खोया हुआ वक़ार वापस हासिल करना चाहता है और अपने मिल्ली व क़ौमी तशख़्ख़ुस का तहफ़्फ़ुज़ भी चाहता है। इस तरह मुमकिन है कि हम बड़ी हद तक इस्तिमार–पसंदों की साज़िशों और उनकी पस–ए–पर्दा चालों से खुद को महफ़ूज़ रख सकें और ऐसे नए दोस्त बना सकें जो शायद हमारे पुराने दुश्मनों की निस्बत हमसे ज़्यादा क़रीब और हमारे लिए उनसे ज़्यादा नफ़ा–बख़्श साबित हों और मग़रिबी इस्तिमार से आज़ादी की इस अज़ीम जद्दोजहद में हमें उनकी ताईद और नुसरत हासिल हो। सच्ची बात यह है कि अगर हमें मशरिक़ का ऐतमाद और उसकी मोहब्बत हासिल हो जाए और आलम–ए–इस्लाम के मशरिक़ से मज़बूत ताल्लुक़ात और मुस्तहकम रब्त–ओ–ज़वाबित क़ायम हो जाएँ तो बिला–शुब्हा इस्लामी मशरिक़ के लिए यह एक नये बाब का आग़ाज़ और अज़ीम फ़तह होगी।

इस मौक़े पर यह वज़ाहत भी ज़रूरी है कि आलम–ए–इस्लाम के हालात उस वक़्त तक दुरुस्त नहीं हो सकते जब तक अवाम हुकूमत से नाराज़ और हुकूमत अवाम से बदज़न व बरहम रहे। इसीलिए ऐसे अस्हाब–ए–दावत व अज़ीमत का होना भी बहुत ज़रूरी है जो पूरी हिम्मत व इस्तिक़लाल के साथ इस्लाह व हिदायत का फ़रीज़ा अंजाम दे सकें लेकिन इसके लिए सही नीयत और अज़्म व हौसला शर्त है। आज ज़रूरत है कि हर शख़्स अपने मैदान में इख़्लास के साथ काम करे, दूसरों के हुक़ूक़ अदा करे, न किसी की खुशनूदी का तालिब हो और न किसी इंसान से अपने लिए कलिमात–ए–मद्ह व तहसीन का मुन्तज़िर रहे बल्कि उसका हर अमल महज़ अल्लाह की रज़ा के लिए हो और वह यक़ीन रखे कि अल्लाह ही उसकी मेहनत का अज्र देगा, इरशाद–ए–इलाही है:

وَمَنْ عَمِلَ صَالِحًا فَلِنَفْسِهِ وَمَنْ أَسَاءَ فَعَلَيْهَا

"जिसने अच्छाई की उसने अपने लिए की और जिसने बुराई की वह उसके सर।"

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद-अल-हसनी (रह०)

بِسْمِ اللهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:09 | सितम्बर २०२६ ई० | वर्ष:18

सम्पादकीय मण्डल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

मुहम्मद हसन नदवी

सह सम्पादक

मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

अनुवादक

मुहम्मद सैफ़

नबी-ए-रहमत (स०अ०व०)

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"बिलाशुब्हा मैं तो (अल्लाह तबारक व तआला की तरफ़ से) सरापा रहमत बनाकर भेजा गया हूं।"

अल कामिल लि इब्ने अदी: 1049

E-Mail: markazulimam@gmail.com

www.abulhasanalinadwi.org

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,य०पी०.229001

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला खाँ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

आशिक़ हूँ दिल-ओ-जाँ से

हज़रत मौलाना मुहम्मद सानी हसनी (रह0)

आशिक़ हूं दिल-ओ-जाँ से रसूल-ए-अरबी (स0) का
मक्की मदनी हाशमी मुत्तलिबी का

ऐ पाक नबी (स0) तेरी नज़र नूर-ए-सहर है
काफ़ूर हुआ जिससे फ़ुसूं तीरा शबी का

आंखों में सभी के है तेरा हुस्न सरापा
है ज़िक्र ज़बानों पे तेरी ख़ुश लक़बी का

दुनिया में तेरे नाम का शोहरा है हर सिम्त
हर इक है शाहिद तेरी आला नसबी का

हर ज़र्रा तेरी ख़ाक-ए-कफ़-ए-पा का गुहर है
आक़ा है तू ही हर अजमी का अरबी का

करता हूँ तेरी ज़ात पे मैं जान को क़ुर्बां
है तुझ पे फ़िदा दिल मरी उम्मी ओ अबी का

मिल जाए मुझे कौसर ओ तस्नीम का साग़र
साक़ी से तक़ाज़ा है मेरी तिश्ना-लबी का

है तू ही तबीब-ए-दिल-ए-बीमार ओ हरासाँ
आया हूँ लिए शौक़ मैं दरमाँ-तुलबी का

मिलता है तेरे दर पे बिलाल-ए-हबशी को
क्या काम तेरे दर पे किसी बू लहबी का

गुस्ताख़ ज़बाँ जो भी हो ख़ामोश रहे वो
हो नास तेरी शान में हर बे-अदबी का

मसकन है तेरा पाक से पाकीज़ा मदीना
क्या कहना है इस शहर की शीरीं रतबी का

जिस शहर का हर ग़ुंचा-ओ-गुल रश्क़-ए-चमन है
है दर्जा बुलंद उसके ज़न ओ मर्द वसबी का

इस अंक में:

ज़माना आज भी उसी दर का मोहताज है............................3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के बाल मुबारकः एक तर्क की हुई सुन्नत..4

मौलाना अब्दुल अज़ीज़ भटकली नदवी

तक़वा क्या है?..7

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सुबूत–ए–नसब के एहकाम...9

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मरियम जमीला – यहूदियत से इस्लाम तक.......................11

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

इल्हाद का तूफ़ान – असबाब व इलाज............................13

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

इब्तिला व आज़माइश में उस्वा–ए–नबवी (स0अ0व0)............15

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

अमीन–ए–हरम...17

मोहम्मद मुसअब नदवी

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) और इन्सानियत साज़ी का फ़न...........19

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

सम्पादकीय

ज़माना आज भी उसी दर का मोहताज है

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

अल्लाह तबारक व तआला ने अपने आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0व0) को तमाम इंसानियत के लिए मुन्तख़ब फ़रमाया। उसने आप (स0अ0व0) को रहती दुनिया तक के लिए नबी बनाया और तमाम नबियों का सरदार व इमाम बनाया। मस्जिद–ए–अक़्सा में नबियों की इमामत का शर्फ़ अता फ़रमाया। आप (स0अ0व0) को मेराज पर बुलाया। आप (स0अ0व0) को मक़ाम–ए–महमूद अता किया। हौज़–ए–कौसर आप को मिला, शफ़ाअत–ए–उज़्मा आप को बख़्शी गई और अल्लाह ने आपको लाखों–लाख लोगों की बख़्शिश का ज़रिया बनाया।

अगर आप तारीख़ उठा कर देखें तो अंदाज़ा होगा कि आप (स0अ0व0) की बेअसत (आगमन–नुबूव्वत) उस वक़्त हुई जब दुनिया तबाही के बिल्कुल किनारे पर खड़ी थी। गोया इंसानियत की सवारी ढलान पर पड़ी हुई थी और उसके सब मुसाफ़िर मीठी नींद सो रहे थे। उन्हें यह इल्म नहीं था कि उनकी सवारी किधर जा रही है और इसका क्या अंजाम होने वाला है? एक सही हदीस में आता है:

"إن الله نظر إلىٰ أهل الأرض فمقتهم عربهم وعجمهم إلا بقايا من أهل الكتاب۔"

"बिला–शुब्हा अल्लाह तबारक व तआला ने ज़मीन पर निगाह फ़रमाई तो इंतिहाई नाराज़ हुआ, अरबों और अजमियों पर, सिवाय कुछ अहले किताब के।" (सही मुस्लिमः 7386)

मुमकिन था कि इस दुनिया के तबाह करने का फ़ैसला कर दिया जाता लेकिन अल्लाह तबारक व तआला ने रहम खाया और रहमतुल–लिल–आलमीन (स0अ0व0) को इस दुनिया में भेजा ताकि इसकी कल ठीक हो और यह दुनिया जो तबाही और खुदकुशी पर आमादा थी उसको बचाया जा सके और उसको वह मुबारक ज़माना नसीब हो जो दुनिया बनने से लेकर क़यामत तक का सब से पुर–बहार ज़माना है। अल्लाह का यह फ़ैसला था जिसके नतीजे में आप (स0अ0व0) की बेअसत हुई।

सरकार–ए–दो आलम मोहसिन–ए–इंसानियत हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0अ0व0) का सब से बड़ा कारनामा यह है कि आप (स0अ0व0) ने इंसानों को इंसान बनाया और उनको जीने का सलीक़ा अता फ़रमाया। गुलामी से निकाल कर आज़ादी बख़्शी। दुनिया की तंगी से निकाल कर दुनिया की वुसअत अता फ़रमाई और इसको बेअसत के मक़ासिद में शुमार फ़रमाया। इंसान जो अपनी आदतों और रस्मों का गुलाम बन गया था और उसकी तंगी में घुटन महसूस कर रहा था उसको इंसानियत की बुलंदी और कुशादगी अता फ़रमाई।

यह आप (स0अ0व0) का फ़ैज़–ए–रहमत ही तो था कि वह दुनिया जो जिहालत की अँधेरियों में भटक रही थी उसको आप (स0अ0व0) ने इल्म की रोशनी दी और इस रोशनी में दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई। अहले इंसाफ़ इस एतराफ़ पर मजबूर हैं कि दुनिया की मौजूदा तरक़्क़ियात मुसलमानों के जुस्तजू–ए–इल्म पर क़ायम हैं। यह आप (स0अ0व0) की रहमतुल–लिल–आलमीनी का सदक़ा है कि दुनिया अदल व इंसाफ़ से भर गई। जहाँ हर ताक़तवर कमज़ोर को खा रहा था वहाँ यह सूरत–ए–हाल पैदा हो गई कि एक कमज़ोर ख़ातून साज़ो–सामान के साथ सैकड़ों मील का सफ़र करती है और कोई उसकी तरफ़ ग़लत निगाह डालने वाला नहीं होता।

आज दुनिया आप (स0अ0व0) की सरापा रहमत तालीमात और उस उस्वा–ए–ज़िंदगी की सब से ज़्यादा ज़रूरतमंद है जो दुनिया के लिए निजात का तन्हा ज़रिया है और हर इंसान के लिए रोशनी का मीनार है। आज यह बताने की ज़रूरत है कि आप (स0अ0व0) किसी क़ौम या किसी मुल्क के नहीं बल्कि सारी दुनिया के लिए हैं। इंसान–दुश्मन ताक़तों ने और इल्म–दुश्मन मुसन्निफ़ों ने जिस तरह तारीख़ मस्ख़ की है और रहमत–ए–आलम (स0अ0व0) की सीरत को जिस ग़लत अंदाज़ में पेश करने की कोशिशें की हैं आज उन जहाालतों का पर्दा फ़ाश करने की ज़रूरत है ताकि दुनिया में लगी हुई आग को बुझाया जा सके और इंसानों को उनके दर्द का दरमाँ और ज़ख़्म का मरहम मिल सके। यह माह–ए–मुबारक यही पैग़ाम देता है कि हमें इसी उस्वा–ए–रहमत को आम करना है और इसकी ज़रूरत से दुनिया को रोशनास कराना है।

रसूलुल्लाह (स०अ०व०) के बाल मुबारक:
एक तर्क की हुई सुन्नत

मौलाना अब्दुल अज़ीज़ भटकली नदवी

अल्लाह तआला ने रसूल–ए–अकरम (स0अ0व0) को क़यामत तक आने वाली पूरी इंसानियत के लिए कामिल नमूना बनाया है। इरशाद–ए–बारी तआला है:

لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِيْ رَسُوْلِ اللّٰهِ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ

"यक़ीनन तुम्हारे लिए रसूल (स0अ0व0) अल्लाह की ज़िंदगी में बेहतरीन नमूना मौजूद है।"

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की ज़िंदगी का हर पहलू उम्मत के लिए हिदायत का सरचश्मा है। आपकी (स0अ0व0) इबादात, मामलात, अख़्लाक़, मुआशरत, लिबास, नशिस्त–ओ–बरख़ास्त और ज़ाहिरी हैय्यत, सब इत्तिबाअ के लायक़ हैं। यही वजह है कि सहाबा किराम (रज़ि0) ने न सिर्फ़ आप (स0अ0व0) के इरशादात को महफ़ूज़ किया बल्कि आप (स0अ0व0) के हुलिया–ए–मुबारक, लिबास और मुबारक बालों की कैफ़ियत तक को बड़ी मुहब्बत और एहतिमाम से रिवायत किया।

अगर रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के बालों की कैफ़ियत महज़ एक ग़ैर अहम तारीख़ी बात होती तो मुहद्दिसीन इसे सही बुख़ारी, सही मुस्लिम, जामे तिर्मिज़ी और शमाइल तिर्मिज़ी में मुस्तक़िल अबवाब के तहत महफ़ूज़ न करते। इससे मालूम होता है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की हर अदा अहल–ए–ईमान के लिए मुहब्बत, इक़्तिदा और इत्तिबाअ का उनवान है।

अफ़सोस कि आज बहुत सी सुन्नतें ख़ुसूसन ज़ाहिरी हैय्यत से मुतअल्लिक़ सुन्नतें अमली ज़िंदगी से तक़रीबन ग़ायब हो चुकी हैं। उन्हीं में रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के बाल मुबारक की सुन्नत भी शामिल है जिस पर अहल–ए–इल्म के हल्क़ों में भी उमूमी तवज्जो कम नज़र आती है। ज़ेर–ए–नज़र तहरीर में इसी सुन्नत का जायज़ा हदीसों की रोशनी में पेश किया जा रहा है।

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि0) फ़रमाते हैं:

إن رسول الله ﷺ كان يضرب شعره منكبيه

"आप (स0अ0व0) के बाल मुबारक शाना–ए–मुबारक तक पहुँच जाते थे।" (सही अल–बुख़ारी, किताब–अल–लिबास: 5903)

हज़रत बराअ बिन आज़िब रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं:

كان النبي ﷺ مربوعاً، بعيداً مابين المنكبين، له شعر بلغ شحمة أذنيه

"नबी करीम (स0अ0व0) दरमियाना क़द के, दोनों कंधों के दरमियान कुशादगी थी और आपके (स0अ0व0) बाल मुबारक कानों की लौ तक पहुँचते थे।" (अल–बुख़ारी, किताबुल–मनाक़िब: 3551)

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि0) से रिवायत है:

كان شعر رسول الله ﷺ إلىٰ أنصاف أذنيه

"रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के मुबारक बाल कानों के दरमियानी हिस्से (आधे कान) तक थे।" (सही मुस्लिम, किताबुल–फ़ज़ाइल: 2338)

हाफ़िज़ इब्न–ए–क़य्यिम (रहमतुल्लाहि अलैहि) लिखते हैं: "आप (स0अ0व0) के बाल मुबारक जुम्मा से कुछ ज़्यादा और वफ़रा से कुछ कम थे। आपकी जुम्मा (बालों की लंबाई) कानों की लौ तक पहुँचती थी और जब बाल ज़्यादा लंबे हो जाते तो आप (स0अ0व0) उन्हें चार चोटियों (लटों) में तक़सीम कर लेते थे।" (ज़ाद–अल–मआद: 1/170)

उम्मुल–मोमिनीन हज़रत आइशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की रिवायत से भी मालूम होता है कि आप (स0अ0व0) के बाल मुख़्तलिफ़ औक़ात में मुख़्तलिफ़ लंबाई के होते थे जिसकी वजह से बज़ाहिर मुख़्तलिफ़ रिवायात वारिद हुई हैं। (अबू दाऊद: 4187)

अल्लामा मनावी (रहमतुल्लाहि अलैहि लिखते हैं:

قال أبو شامة: وقد دلت صحاح الأخبار علىٰ أن شعره إلىٰ أنصاف أذنيه، وفی رواية يبلغ شحمة أذنيه، وفی أخرىٰ بين أذنيه وعاتقه، وفی أخرىٰ يضرب منكبيه، ولم يبلغنا فی طوله أكثر من ذلک، وہذا الإختلاف باعتبار اختلاف أحواله، فروی فی ہذه الأحوال المتعددة بعد ما كان حلقه فی حج أو عمرة

हाफ़िज़ इब्न–ए–हजर असक़लानी (रहमतुल्लाहि अलैहि) इन रिवायात में तत्बीक़ देते हुए फ़रमाते हैं:

وما دل عليه الحديث من كون شعره ﷺ كان إلىٰ قرب منكبيه كان غالب أحواله، وكان ربما طال حتى يصير ذؤابة، ويتخذ منه عقائص وضفائر، وہذا محمول علىٰ الحال التی يبعد عہده بتعہد شعره فيہا، وہي حالة الشغل بالسفر ونحوه

इन रिवायात में कोई तआरुज़ नहीं बल्कि यह मुख़्तलिफ़ औक़ात की कैफ़ियत का बयान है। जब बाल बढ़ जाते तो कंधों तक पहुँच जाते और जब निस्बतन छोटे होते तो निस्फ़ कान या कानों की लौ तक रहते थे।

इससे यह हक़ीक़त वाज़ेह हो जाती है कि हुज़ूर (स0अ0व0) ने हमेशा एक ही लंबाई के बाल नहीं रखे बल्कि कभी निस्फ़ कान तक, कभी कानों की लौ तक और जब बाल बढ़ जाते तो शाना मुबारक तक पहुँच जाते थे।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने सिर्फ़ बाल रखने की तालीम नहीं दी बल्कि उनकी देखभाल का भी हुक्म फ़रमाया।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि0) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि जिस शख़्स के बाल हों वह उनकी अच्छी तरह देखभाल करे। (अबू दाऊद, किताबुत्तरज्जुलः 4163)

मुल्ला अली क़ारी (रहमतुल्लाहि अलैहि) मिरक़ातुल–मफ़ातीह में इस हदीस की शरह करते हुए लिखते हैं कि इसका मतलब यह है कि अपने बालों को साफ़ रखे, उनमें तेल लगाए, कंघी करे और उन्हें परागंदा न छोड़े।" (मिरक़ातः 7 / 2827)

यह तसरीहात इस बात की दलील हैं कि शरीअत ने बाल रखने को बे–मक़सद या महज़ एक वक़्ती आदत क़रार नहीं दिया बल्कि इसके साथ आदाब भी बयान किए हैं।

अबू बक्र इब्नुल–अरबी ने "अल–मवाहिबुल–लदुनिय्या" में सराहत के साथ लिखा है कि हुज़ूर (स0अ0व0) ने सिर्फ़ सुल्ह–ए–हुदैबिया, उमरा–ए–क़ज़ा और हज्जतुल–विदाअ के मौक़े पर हल्क़ कराया और सिर्फ़ एक बार क़सर कराया जैसा कि सहीहैन की रिवायात से मालूम होता हैः

لم يحلق النبي ﷺ فى سنى الهجرة إلا عام الحديبية وعمرة القضاء وحجة الوداع ولم يقصر شعره إلا مرة واحدة كما فى الصحيحين (सफ़ाः 104)

इन अहादीस से वाज़ेह होता है कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के बाल सिर्फ़ एक तारीख़ी तज़किरा नहीं बल्कि सुन्नत–ए–नबवी का हिस्सा हैं और उनकी रिआयत मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) का एक मज़हर है। यही वजह है कि उलमा और फ़ुक़हा ने इस अमल को आपकी (स0अ0व0) सुन्नत–ए–आदिया में शुमार किया है जिस पर मुहब्बत–ए–रसूल और इत्तिबा–ए–सुन्नत की नीयत से अमल करना बाइस–ए–अज्र–ओ–सवाब है। (अल–मौसूअतुल–फ़िक़्हिय्यतुल–कुवैतिय्याः 26 / 252)

बाज़ हज़रात यह कहते हैं कि चूँकि बाल रखना अरब मुआशरे का रिवाज था, इसलिए इसकी पैरवी मतलूब नहीं। यह बात जुज़्वी तौर पर दुरुस्त ज़रूर है कि यह आपकी (स0अ0व0) सुन्नत–ए–आदिया में से है लेकिन इससे यह नतीजा निकालना कि इसकी कोई दीनी अहमियत ही नहीं, सही नहीं।

यह हक़ीक़त भी मुसल्लम है कि उलमा–ए–किराम सिर्फ़ इल्म के हामिल नहीं बल्कि उम्मत के मुक़्तदा भी हैं। आम मुसलमान बहुत से दीनी आमाल में उलमा को देखकर अमल करते हैं। अगर उलमा किसी सुन्नत का एहतिमाम करें तो इसका असर मुआशरे पर भी पड़ता है और अगर किसी सुन्नत की तरफ़ अमली तवज्जोह कम हो जाए तो अवाम में भी इसका ज़ौक़ कमज़ोर पड़ जाता है।

यहाँ यह बात पूरी वज़ाहत के साथ समझ लेनी चाहिए कि बाल रखना फ़र्ज़ या वाजिब नहीं, न ही इसके तर्क पर किसी आलिम या मुसलमान को मोरिद–ए–मलामत ठहराया जा सकता है लेकिन यह भी हक़ीक़त है कि जब किसी अमल का इस्तिहबाब अहादीस से साबित हो और उस पर अमल करना आसान भी हो तो खुसूसन अहल–ए–इल्म से इसके एहतिमाम की तवक़्क़ो बजा है, क्योंकि उनकी अमली ज़िंदगी खुद दावत–ए–दीन का एक मुअस्सिर ज़रिया होती है।

हमारे मदारिस और दीनी हल्क़ों में अकाबिर–ए–उम्मत से मुहब्बत का जज़्बा क़ाबिल–ए–तहसीन है। इसी मुहब्बत की बिना पर मख़्सूस लिबास मसलनः टोपी, कुर्ता, पायजामा और दीगर ज़ाहिरी शआइर का एहतिमाम किया जाता है जो अपनी जगह एक अच्छी रिवायत है, अलबत्ता यहाँ एक इल्मी सवाल पैदा होता हैः

अगर अकाबिर की निस्बत से इख़्तियार किए गए बाज़ तरीक़ों का इस दर्जा एहतिमाम हो सकता है तो क्या रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के बाल मुबारक से मुताल्लिक़ सही अहादीस में साबित सुन्नत इससे ज़्यादा तवज्जोह की मुस्तहिक़ नहीं?

यह सवाल किसी शख़्सियत या इदारे पर तनक़ीद नहीं बल्कि तरजीहात पर ग़ौर करने की दावत है। हक़ीक़त यह है कि हमारे तमाम अकाबिर की अज़मत का राज़ ही इत्तिबा–ए–रसूल (स0अ0व0) था। उन्होंने कभी अपनी किसी आदत या तर्ज़–ए–अमल को सुन्नत–ए–नबवी (स0अ0व0) पर मुक़द्दम नहीं किया। लिहाज़ा अगर हम उनसे सच्ची मुहब्बत रखते हैं तो इसका तक़ाज़ा यही है कि उनके नक़्श–ए–क़दम पर चलते हुए

सुन्नत–ए–रसूल (स0अ0व0) को अपनी अमली ज़िंदगी में ज़्यादा से ज़्यादा ज़िंदा करें।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की हर सुन्नत ख़्वाह इसका ताल्लुक़ इबादात से हो या आदात से, मोमिन के लिए बाइस–ए–मुहब्बत और मोजिब–ए–सआदत है। सहाबा किराम (रज़ि0) की ज़िंदगी का नुमायाँ वस्फ़ यही था कि वह आपकी (स0अ0व0) छोटी से छोटी अदा को भी अपनी ज़िंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश करते थे। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि0) इस बाब में ख़ुसूसन मारूफ़ हैं। हाफ़िज़ इब्न–ए–हजर (रहमतुल्लाहि अलैह) ने फ़त्हुल–बारी में मुतअद्दिद रिवायात नक़ल की हैं कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि0) रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के आसार और आदात की पैरवी में ग़ैरमामूली एहतिमाम फ़रमाते थे यहाँ तक कि जिन मक़ामात पर आप (स0अ0व0) ने क़याम फ़रमाया वहाँ क़याम करते और जिन रास्तों से आप (स0अ0व0) गुज़रे उन्हीं रास्तों से गुज़रने की कोशिश करते थे। (फ़त्हुल–बारी, किताबुस्सलातः 1/567, रक़मः 483)

इस तर्ज़–ए–अमल से मालूम होता है कि सहाबा किराम (रज़ि0) के नज़दीक मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) का तक़ाज़ा सिर्फ़ वाजिबात की अदायगी नहीं बल्कि हस्ब–ए–इमकान आपकी (स0अ0व0) हर अदा से वाबस्तगी भी था।

इसी जज़्बा–ए–इत्तिबाअ की बुनियाद पर मुहद्दिसीन ने रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के शमाइल, लिबास, नालैन, असा, ख़ुशबू, अंगूठी और बाल मुबारक तक को मुस्तक़िल अबवाब में जमा किया। अगर यह उमूर दीनी एतिबार से बिल्कुल ग़ैर अहम होते तो उनकी यह ग़ैरमामूली इल्मी ख़िदमत कभी वुजूद में न आती।

यह कहना दुरुस्त नहीं कि जिसने बाल–ए–नबवी (स0अ0व0) न रखे वह सुन्नत का तारिक या क़ाबिल–ए–मलामत है क्योंकि फ़ुक़हा ने इस अमल को मुस्तहब क़रार दिया है, न कि फ़र्ज़ या वाजिब लेकिन इतनी बात भी अपनी जगह हक़ीक़त है कि जिस सुन्नत पर अमल करना आसान हो और जो सहीह अहादीस से साबित हो, उसके अहिया की कोशिश ख़ुसूसन अहल–ए–इल्म की ज़िम्मेदारी है।

अहल–ए–मदारिस और उलमा–ए–किराम उम्मत के मुक़्तदा हैं। उनके कामों से अवाम के रुझान बनते हैं। अगर वह अपनी इस्तिताअत के मुताबिक़ सुन्नत–ए–नबवी (स0अ0व0) का ज़्यादा से ज़्यादा एहतिमाम करें तो मुआशरे में सुन्नतों के अहिया का एक नया ज़ौक़ पैदा हो सकता है। इसका मतलब हरगिज़ यह नहीं कि जो इस सुन्नत पर अमल न करे उस पर नकीर की जाए बल्कि मक़सद यह है कि सुन्नत को सुन्नत समझा जाए, उसकी क़द्र की जाए और उस पर अमल करने वालों को अजनबी न समझा जाए।

इस सिलसिले में एक अहम दावती पहलू यह भी है कि सुन्नत का अहिया सिर्फ़ इन्फ़िरादी अमल का नाम नहीं बल्कि यह मुआशरे के दीनी मिज़ाज की तशकील का ज़रिया भी है। जब अहल–ए–इल्म और दीनी शख़्सियात सुन्नतों को अपनी अमली ज़िंदगी में ज़िंदा रखते हैं तो अवाम के अंदर उनकी क़द्र–ओ–मंज़िलत पैदा होती है और वह सुन्नत को महज़ किताबों में मज़कूर एक तारीख़ी अमल नहीं बल्कि ज़िंदा दीनी रिवायत के तौर पर देखने लगते हैं। ख़ुसूसन वह सुन्नतें जो तर्क–ए–वाजिब या तर्क–ए–फ़र्ज़ से मुतअल्लिक़ नहीं बल्कि मुहब्बत, इत्तिबाअ और हुस्न–ए–इक़्तिदा के दायरे में आती हैं, उन्हें हिकमत–ओ–नर्मी के साथ आम करना एक मुअस्सिर दावती ज़रिया बन सकता है। इसके लिए ज़रूरी है कि सुन्नतों के अहिया को बाहमी निज़ाअ, ताना–ओ–तशनीअ या अफ़ज़लियत के दावों का ज़रिया न बनाया जाए बल्कि मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) को बुनियाद बनाकर लोगों के दिलों में यह एहसास पैदा किया जाए कि आपकी (स0अ0व0) ज़िंदगी का कोई भी साबित–शुदा पहलू हमारे लिए बे–मानी नहीं। एक सुन्नत का अहिया बसा औक़ात कई दूसरी सुन्नतों की तरफ़ रग़बत पैदा करता है और यूँ मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) महज़ जज़्बाती वाबस्तगी के बजाय अमली इत्तिबाअ की सूरत इख़्तियार कर लेती है।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की मुहब्बत ईमान का लाज़िमी तक़ाज़ा है और सच्ची मुहब्बत का सबसे रोशन सबूत इत्तिबाअ है, लिहाज़ा बाल की सुन्नत को भी इसी ज़ाविये से देखने की ज़रूरत है। न इसे दीन का मेयार बनाया जाए, न इसे बे–हक़ीक़त समझकर नज़रअंदाज़ किया जाए बल्कि इसे रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की एक साबित–शुदा सुन्नत समझते हुए इसकी क़द्र की जाए और जो अहल–ए–इल्म और मुसलमान मुहब्बत–ए–रसूल (स0अ0व0) के जज़्बे से इस पर अमल करना चाहें, उनकी हौसला–अफ़ज़ाई की जाए। यही एतिदाल का रास्ता है और यही अकाबिर–ए–उम्मत के मनहज के भी मुताबिक़ है।

(तरतीबः मुहम्मद नस्रुल्लाह नदवी)

तक़्वा क्या है

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

मौजूदा दौर का एक आम फ़ित्नाः

दुनिया में उलूम के माहिरीन ने यह तस्लीम किया है कि हर फ़न के अलग माहिरीन होते हैं। इसी तरह मसला है इल्म–ए–दीन का कि जिस आदमी ने इसके लिए अपनी पूरी ज़िंदगी लगाई और उसने बारीकियाँ समझीं, वह उसूल को जानता है। अफ़सोस की बात यह है कि आजकल लोग उसूल भी नहीं जानते, बस इतना समझते हैं कि कुरआन मजीद में आया है। अगर कोई उनसे पूछे कि कुरआन की एक आयत को तुमने किस तरह समझा? क्या तुम सिर्फ़ तर्जुमा पढ़कर फ़ैसला करना चाहते हो? ज़ाहिर है सिर्फ़ कुरआन या हदीस का तर्जुमा पढ़कर कोई फ़ैसला नहीं कर सकता। जैसे कि आज दानिश्वर तबक़ा जब दीन की तरफ़ आता है तो उससे अक्सर यह ग़लती होती है कि तर्जुमा पढ़कर ख़ुद फ़ैसले शुरू कर देते हैं। वह उलमा से रुजू करने के बजाय कहते हैं कि हम कुरआन व हदीस पर अमल कर रहे हैं, हालाँकि न वह कुरआन से वाक़िफ़ होते हैं, न हदीस से। तर्जुमा वाली सेकंड हैंड मालूमात ऐसी नहीं होती हैं कि उनकी बुनियादों पर फ़ैसले किए जाएँ, बल्कि यह फ़ैसले उन्हीं लोगों को करने का हक़ है जिनकी मालूमात फ़र्स्ट हैंड होती हैं और बराह–ए–रास्त मुताला होता है, फिर तमाम बुनियादों और उसूलों का मुताला होता है।

अगर ऐसा न हो तो फिर यही हाल होता है कि आदमी कुछ का कुछ मफ़हूम समझ लेता है। क़िस्सा मशहूर है कि एक साहिब का मामूल था, वह हर इस्तिंजा के बाद वित्र पढ़ा करते थे। लोगों ने पूछा कि आप हर इस्तिंजा के बाद वित्र क्यों पढ़ते हैं? उन्होंने जवाब दिया कि यह तो हदीस का हुक्म है, मगर लोग उस पर अमल नहीं करते। फिर जब लोगों ने हदीस पूछी तो उन्होंने अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) की यह हदीस सुनाईः

من استجمر فليوتر

"जो इस्तिंजा करे उसको चाहिए कि वह वित्र करे।"

ज़ाहिर बात है कि इस हदीस में ''वित्र'' का तर्जुमा बिल्कुल अलग है और इससे मुराद यह है कि जो आदमी ढेले से इस्तिंजा करे उसको चाहिए कि वह ताक़ अदद इस्तेमाल करे।

वाक़्या यह है कि इस वक़्त दानिश्वर तबक़े के पास सेकंड हैंड मालूमात हैं। तर्जुमा पढ़कर यह समझना कि हमको अरबी आ गई और अब हम कुरआन मजीद का फ़हम भी हासिल कर चुके, ज़ाहिर है ग़लत बात है। कुरआन मजीद के इल्म की कई परतें हैं, अगर उनमें आदमी घुसता चला जाए तो उसकी उम्र ख़त्म हो जाए, उसकी ज़िहानत ख़त्म हो जाए और उसका इल्म भी ख़त्म हो जाए, लेकिन कुरआन मजीद की परतें ख़त्म नहीं होंगी। अब अगर कोई इसकी पहली परत तक पहुँच जाता है और उसको कुरआन–फ़हमी का दावा हो जाए तो ज़ाहिर है बिल्कुल ग़लत है और यह इस ज़माने के फ़ितनों में से एक बड़ा फ़ितना है।

मौजूदा दौर में अगर किसी आदमी को थोड़ी सी अरबी आ जाए और वह कुरआन पढ़ ले तो समझ लेता है कि हमने पूरा दीन समझ लिया। सिर्फ़ तन्हा कुरआन मजीद पूरा दीन नहीं है, बल्कि सही बात यह है कि दीन की अस्ल–ए–अव्वल कुरआन मजीद है और अस्ल–ए–सानी हदीस व सीरत और सुन्नत–ए–रसूल (स0अ0व0) है। जब इन सारी चीज़ों में आदमी महारत पैदा कर ले तब यह कहा जा सकता है कि हाँ! उसको किसी क़दर फ़हम हासिल है, लेकिन फिर भी उसको बोलने का हक़ नहीं, इसलिए कि यह हक़ अस्लन उन मुज्तहिदीन–ए–फ़न को हासिल था जिन्होंने ग़ैरमामूली मेहनत की। तारीख़ में इसकी मिसालें मौजूद हैं, अगर उनको पढ़ा जाए तो अक़्लें दंग रह जाएँ।

मौजूदा दौर का यह एक फ़ितना है कि हर आदमी फ़तवा दे रहा है और दीन के सिलसिले में रायज़नी कर रहा है कि अरे यह मौलवी क्या जानें जो दीन के बारे में फ़तवा दे देते हैं। मालूम होना चाहिए कि यह हक़ उन्हीं को हासिल है, उन्होंने इसके लिए अपनी उम्रों को खपा दिया है। इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाहि अलैहि) और इमाम शाफ़ई (रहमतुल्लाहि अलैहि) वग़ैरह के मुतअल्लिक़ आता

है कि यह हज़रात रात–रात भर जागते थे। जब नींद आती तो कभी टब में पानी भरकर बैठ जाते। लोगों ने अर्ज़ किया कि हज़रत! सेहत ख़राब हो जाएगी। फ़रमायाः मैं इस ख़्याल से जागता हूँ और मसाइल का इस्तिंबात करता हूँ कि उम्मत इस उम्मीद में है कि मुहम्मद जाग रहे होंगे और कल सुबह उनसे मसला पूछ लेंगे।

इमाम शाफ़ई (रहमतुल्लाहि अलैहि) का एक मर्तबा इमाम अहमद बिन हंबल (रहमतुल्लाहि अलैहि) के यहाँ जाना हुआ। उन्होंने उनके लिए रात में तहज्जुद के लिए पहले से पानी का इंतज़ाम कर दिया, लेकिन जब फ़ज्र के वक़्त वह उनके कमरे गए तो देखा कि लोटा भरा रखा है और नमाज़ का वक़्त भी क़रीब है। उन्होंने नमाज़ के लिए बुलाया तो इमाम शाफ़ई बिस्तर से उठे और नमाज़ को चल दिए, फिर फ़ज्र की नमाज़ भी पढ़ाई। यह देखकर इमाम अहमद बिन हंबल को मज़ीद तअज्जुब हुआ। नमाज़ के बाद इमाम शाफ़ई ने खुद फ़रमाया कि रात अजीब क़िस्सा पेश आया। मैं जैसे ही बिस्तर पर लेटा तो मेरे ज़ेहन में एक हदीस आई, मैंने उस पर ग़ौर करना शुरू किया और उससे मसाइल का इस्तिंबात किया तो मैंने सौ मसले निकाले, यहाँ तक कि फ़ज्र की अज़ान हो गई। अंदाज़ा हुआ कि वह तो रात भर दीन की एक बड़ी ख़िदमत में लगे हुए थे।

इन वाक़्यात से पता चलता है कि बिला–शुब्हा इन हज़रात ने अपने आपको दीन के लिए पूरी तरह कुर्बान किया था और उनको यह हक़ हासिल था कि वह दीन के सिलसिले में कोई बात कहें। इस बात से इनकार नहीं कि आज भी यह दरवाज़ा बंद नहीं है। जो शख़्स भी वैसी मेहनत करेगा, अल्लाह तआला उसको वह ज़िहानत देगा, वह इल्म में ग़ोते लगाएगा और कुरआन व हदीस में वह बुरे–ए–कामिल हासिल करेगा, फिर पूरी एहतियात के साथ वह आगे बढ़ेगा तो अल्लाह उसको मक़ाम अता फ़रमाएँगे।

इस दौर में अल्लाह के किस बंदे से यह उम्मीद की जाए कि वह इमाम अबू हनीफ़ा या इमाम शाफ़ई बन जाएगा। आज हाल यह है कि हर जगह सूद का गुबार मौजूद है। हदीस में भी आता है कि एक दौर ऐसा आएगा जिसमें आदमी अगर सूद से बच भी जाए तो उसके गुबार से नहीं बचेगा। सच्ची बात यह है कि फ़ितनों का दौर है और इसी की वजह से लोग मुसीबत में पड़ गए।

हासिल यह कि दीन के बारे में बग़ैर किसी तहक़ीक़ के कोई बात कह देना इंतिहाई ग़लत बात है और अल्लाह के यहाँ उसकी पकड़ होगी। अगर आज के नए लोग दीन के बारे में रायज़नी करते हैं तो इससे बड़ी हिमाक़त नहीं और जो उनके पीछे चलें तो उनसे बड़ा कोई अहमक़ नहीं। कोई वकील के पास जाकर कहे कि मुझे तेज़ बुख़ार है, तुम कोई दवा बता दो तो लोग उसको पागल ही समझेंगे और कहेंगे कि पहले इसका पागलख़ाने में इलाज कराओ फिर दवाख़ाने ले जाओ। यही हाल दीन के मामले में भी है। अगर कोई आम आदमी किसी दानिश्वर के पास जाकर मसला पूछा, या नेट पर कोई आदमी बहुत अच्छी बात कह दे और वह उसको समझे कि उन्होंने तो ऐसी नई बात कही जो आज तक किसी ने नहीं की। याद रखें! अस्ल दीन वही है जो बताया जा चुका, नया दीन कुछ नहीं है। दीन में नई बात कहने का मतलब यह है कि वह बिदअत है। अगर कोई चीज़ किताब व सुन्नत में मौजूद है तो वह क़दीम है और अगर मौजूद नहीं है फिर भी कोई बताता है तो ज़ाहिर है वह बिदअत है।

ज़रूरत है कि ऐसे लोगों से बचा जाए और जो ऐसे लोग हैं वह खुद भी अपनी इस्लाह करें। जिन्होंने दीन के लिए अपनी ज़िंदगियाँ नहीं खपाईं, जिनको शायद दीन पर अमल करने की तौफ़ीक़ भी पूरी तरह नहीं हुई। बहुत से लोग समझते हैं कि हमारे लिए दीन का फ़हम हासिल करने में कुरआन मजीद पढ़ना ही काफ़ी है, जबकि खुद कुरआन मजीद में बेशुमार मौक़ों पर यह बात कही गई कि:

مَّنْ يُطِعِ الرَّسُولَ فَقَدْ أَطَاعَ اللّٰهَ وَمَن تَوَلَّـى فَمَا أَرْسَلْنَاكَ عَلَيْهِمْ حَفِيْظاً

"जिसने रसूल की इताअत की तो उसने अल्लाह की इताअत की और जो फिर गया तो हमने आपको उन पर कोई दारोग़ा बनाकर नहीं भेजा।" (अन्निसाः 80)

फ़हम–ए–कुरआन के साथ फ़हम–ए–हदीस और अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) की सच्ची पैरवी भी निहायत ज़रूरी है। अल्लाह के रसूल (स0अ0व0) ने खुद यह बात इरशाद फ़रमाई कि कुरआन सख़्त व दुश्वार है उस शख़्स के लिए जो उसको पसंद न करे और उस शख़्स के लिए आसान है जो उसकी पैरवी करे और जो मेरी हदीस सुनेगा, उसको महफ़ूज़ रखेगा और उसके मुताबिक़ अमल करेगा, वह क़यामत में कुरआन मजीद के साथ आएगा और जिसने मेरी हदीस की बे–वक़अती की उसने कुरआन की बे–वक़अती की और जिसने कुरआन की बे–वक़अती की उसने दुनिया व आख़िरत में नुक़सान उठाया।

सुबूत-ए-नसब के एहकाम

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मुतअल्लक़ा मदख़ूला के बच्चे के नसब का सुबूतः

अगर शौहर ने अपनी बीवी को तलाक़–ए–रजई या तलाक़–ए–बाइन दी और तलाक़ के बाद छः महीने से पहले उसके बच्चा पैदा होता है तो उसका नसब शौहर से साबित होगा और बच्चे की विलादत से उसकी इद्दत पूरी हो जाएगी और अगर मुतअल्लक़ा रजईया या बाईना के तलाक़ के बाद दो साल से कम मुद्दत में बच्चा पैदा हुआ तो उसका नसब शौहर से साबित होगा और उसकी विलादत से इद्दत पूरी हो जाएगी, इसलिए कि हमल कि अक्सर मुद्दत दो साल है लिहाज़ा माना जाएगा कि तलाक़ के वक़्त वह हमल से थी और हामिला की इद्दत वज़अ हमल होती है। (हिदाया मअल फ़तहः 4/172, हिन्दियाः 1/537)

और अगर बच्चा की पैदाइश तलाक़–ए–रजई के दो साल या उसके बाद हुई तो अगर औरत ने इद्दत गुजर जाने का इक़रार नहीं किया था तो यह बच्चा शौहर ही का समझा जाएगा और माना यह जाएगा कि शौहर ने अपनी बीवी से रुजू कर लिया होगा।

(हिदाया मअल फ़तहः 4/172)

और अगर बच्चा की पैदाइश तलाक़–ए–बाइना के दो साल या उससे ज़्यादा के बाद हुई तो उसका नसब शौहर से साबित नहीं होगा, इल्ला यह कि शौहर इसका दावा करे तो माना यह जाएगा कि वती बिल–शुबहा की वजह से हमल ठहर गया होगा।

(हिदाया मअल फ़तहः 4/173)

सुबूत–ए–नसब की लाज़मी शर्तः

ऊपर कुछ जगहें बताई गईं जिनमें मुतल्लक़ा रजइया और मुतल्लक़ा बाइना से पैदा होने वाले बच्चा का नसब शौहर से साबित हो जाता है लेकिन इसके लिए एक ज़रूरी शर्त पर ध्यान देना भी ज़रूरी है और वह शर्त यह है कि बच्चा का नसब शौहर से उसी वक़्त साबित होगा जब शौहर या तो बीवी के हामिला होने का इक़रार करे, या उस पर गवाही पाई जाए कि बच्चा उसी औरत से पैदा हुआ है, या उस औरत का हमल ज़ाहिर हो, इन तीन शक्लों में से कोई शक्ल भी न पाई जाए तो नसब साबित नहीं होगा। (दुर्रे मुख़्तार व रद्दुल मुहतार शामीः 3/545)

जब इ   ते वफ़ात में विलादत होः

अगर किसी औरत के शौहर का इंतिक़ाल हो जाए और इंतिक़ाल के छह महीने के अंदर–अंदर उसके बच्चा की पैदाइश हो तो उस बच्चा का नसब शौहर से साबित हो जाएगा और अगर छह महीने पूरे होने के बाद शौहर की वफ़ात से दो साल के अंदर–अंदर बच्चा पैदा हो और उस मोअतद्दा ने इद्दत गुजरने का इक़रार न किया हो तो उस बच्चा का नसब भी शौहर से साबित हो जाएगा और अगर इद्दत पूरी हो जाने का इक़रार कर लिया लेकिन इक़रार करने के छह महीने के अंदर–अंदर बच्चा पैदा हुआ तो उसका नसब भी शौहर से साबित हो जाएगा और अगर इद्दत गुजरने का इक़रार करने के छह महीने बाद या शौहर की वफ़ात से दो साल बाद बच्चा पैदा हुआ तो बच्चा का नसब शौहर से साबित नहीं होगा।

ख़्याल रहे कि जैसे मुतल्लक़ा के बच्चा के सुबूत–ए–नसब के लिए गवाही का पाया जाना या हमल का ज़ाहिर होना लाज़िमी शर्त है, मोअतद्दा–ए–वफ़ात के लिए भी शर्त है।

(हिदायाः 4/175–176, हिन्दियाः 1/537)

निकाह फ़ासिद और वती बिश्शुब्हा के बाद पैदा होने वाले बच्चे के नसब का सुबूतः

अगर निकाह की शराइत में से कोई शर्त न पाई जाए मसलनः दो गवाह न हों या गवाहों में से कोई एक ग़ैर मुस्लिम हो, या औरत महरमों में से हो तो यह निकाह–ए–फ़ासिद होता है, शौहर पर लाज़िम है कि इस तरह का निकाह हो तो मुतारकत करे यानी कह दे कि मैंने तुम को छोड़ दिया या क़ाज़ी निकाह ख़त्म कर दे।

(शामीः 3/131–133)

बहरहाल जब निकाह–ए–फ़ासिद हो जाए और

शौहर औरत से वती कर ले तो वती के दिन से छह महीने के बाद और दो साल के अंदर जो बच्चा पैदा होगा उसका नसब उस शख़्स से साबित हो जाएगा ख़्वाह वह दावा करे या न करे। (शामीः 3/134, हिंदियाः 1/330)

रही वह सूरत जब वती बिल–शुबहा हो जाए यानी किसी औरत को अपनी बीवी समझ कर उससे वती कर ली मसलनः धोके से बजाए बीवी के किसी और को रुख़्सत करा दिया गया तो अगर उस औरत के बच्चा पैदा हुआ और वती करने वाला उसको अपना बच्चा क़रार दे तो उसका दावा मान लिया जाएगा, दावा न करे तो उसका बच्चा नहीं माना जाएगा।

(अल–बहरुर राइक़ः 4/172)

मुश्रिक से निकाह के नतीजे में पैदा होने वाले बच्चे का नसबः

अगर कोई मुसलमान किसी मुशरिक जैसे हिंदू या पारसी या दहरिया औरत से निकाह कर ले तो यह निकाह सिरे से मुनअक़िद ही नहीं होगा और अगर बच्चा पैदा हो जाए तो उसका नसब साबित नहीं होगा और अगर ईसाई या यहूदी औरत से निकाह किया तो निकाह मुनअक़िद हो जाएगा और नसब भी साबित हो जाएगा। (शामीः 3/28)

अगर मुसलमान औरत किसी भी तरह के काफ़िर से शादी कर ले तो निकाह मुनअक़िद नहीं होगा ख़्वाह वह यहूदी या ईसाई हो, या हिंदू, पारसी और मुलहिद बग़ैरा हो और अगर शादी के नतीजे में बच्चा पैदा हो तो उसका नसब साबित नहीं होगा। (शामीः 3/555)

टेस्ट ट्यूब बेबी की मुख़्तलिफ़ शक्लें और उनके एहकामः

आज के दौर में मेडिकल साइंस ने काफी तरक़्क़ी कर ली है चुनांचे जिन मर्दों और औरतों के औलाद नहीं होती है, टेस्ट ट्यूब के ज़रिया अल्लाह के हुक्म से उनके औलाद हो जाती है, इसकी कई शक्लें हैं और सब के अलग अहकाम हैं, हम ज़ैल में कुछ शक्लें और उनके अहकाम दर्ज कर रहे हैंः

1– एक तरीका यह है कि शौहर की मनी और उसकी बीवी के बैज़ा को लेकर ख़ारजी ट्यूब में रखकर अफ़ज़ाइश की जाती है फिर कुछ वक़्त के बाद इस मजमूआ को बीवी के रहम में मुंतक़िल कर दिया जाता है फिर वहीं से बच्चा की पैदाइश होती है, इस शक्ल को अक्सर उलेमा ने ज़रूरत के वक़्त जाइज़ क़रार दिया है।

(फतवा दारुल इफ़्ता जामियातुर रशीदः 7775)

और इसके नतीजे में जो बच्चा पैदा होगा उसका नसब शौहर ही से साबित होगा, इसलिए कि अल्लाह का इरशाद है कि औलाद को जो माएं जनती हैं वही उसकी मां होती हैं;

إِنْ أُمَّهَاتُهُمْ إِلَّا اللَّائِي وَلَدْنَهُمْ

पीछे गुजर चुका है कि आंहज़रत (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि बच्चा साहिबे फ़राश का होता है यानी शौहर का; "अल–वलदु लिल–फ़राश" (बच्चा फ़राश का होता है)। (बुख़ारीः 2053, मुस्लिमः 1457)

2– अगर शौहर अपने नुत्फ़ा और दूसरी अजनबीया औरत के बैज़ा को ट्यूब में रखकर उसको बार–आवर कराए और फिर एक मुद्दत के बाद उसे अपनी बीवी के रहम में मुंतक़िल करवा दे फिर वहीं से बच्चा की पैदाइश हो तो शरअन यह अमल हराम है लेकिन इस बच्चा का नसब भी "अल–वलदु लिल–फ़राश" (बच्चा फ़राश का होता है) से साबित हो जाएगा, इसलिए कि बच्चा को जिसने जना है कुरआन के हुक्म के मुताबिक़ वही उसकी मां हैः

إِنْ أُمَّهَاتُهُمْ إِلَّا اللَّائِي وَلَدْنَهُمْ

3– अगर शौहर के अलावा दूसरे शख़्स के नुत्फ़ा को अपनी बीवी के बैज़ा में रखकर ट्यूब में बार–आवर कराए फिर बीवी के रहम में मुंतक़िल करा दे और बीवी ही बच्चा को जने तो ऊपर बयान करदा दलाइल की वजह से इस बच्चा का नसब भी इन्हीं मियां–बीवी से साबित हो जाएगा लेकिन इस तरह कराना हराम है और ज़िनाकारी से मुशाबेह है।

4– अगर शौहर के नुत्फ़ा और बीवी के बैज़ा को ट्यूब में बार–आवर करा के किसी ग़ैर औरत के रहम में रखा और ग़ैर औरत ही ने उसको जन्म दिया तो उसका नसब इन मियां–बीवी से साबित नहीं होगा और वह औरत अगर शादीशुदा है तो बच्चा का नसब उस औरत के शौहर से साबित होगा और शादीशुदा नहीं है तो बच्चा सिर्फ़ उस औरत की तरफ़ मंसूब होगा जैसे ज़िना में होता है और ऐसा अमल करना शरअन हराम होगा।

5– अगर ग़ैर मर्द का नुत्फ़ा और ग़ैर मनकूहा का बैज़ा ट्यूब में बार–आवर कराया फिर मनकूहा के रहम में डाला तो यह एक तरह का ज़िना होगा, अलबत्ता बच्चा का नसब शौहर ही से साबित हो जाएगा।

मरियम जमीला

यहूदियत से इस्लाम तक

सैय्यद मुहम्मद मक्की हसनी नदवी

मरियम जमीला का नाम उन ख़्वातीन में नुमायाँ हैसियत रखता है जिन्होंने जदीद मग़रिबी माहौल में परवरिश पाने के बावजूद इस्लाम के मुताला के ज़रिया अपनी फ़िक्री और रूहानी ज़िंदगी को एक नई सिम्त दी। उनकी ज़िंदगी इस हक़ीक़त की रोशन मिसाल है कि हक़ की तलाश अगर इख़्लास, दियानत और इल्मी जुस्तजू के साथ की जाए तो इंसान अपने माहौल, मुआशराती दबाव और साबिक़ा तसव्वुरात से बुलंद होकर हक़ीक़त तक पहुँच सकता है। उनका इस्लाम की तरफ़ सफ़र अचानक किसी एक लम्हा में मुकम्मल नहीं हुआ बल्कि इसके पीछे एक तवील फ़िक्री कश्मकश, मज़हब के बारे में सवालात, मग़रिबी तहज़ीब से बे-इत्मिनानी, यहूदियत और ईसाइयत का मुताला, इस्लाम के बारे में इब्तिदाई शुकूक और बिल-आख़िर कुरआन मजीद के पैग़ाम से गहरी वाबस्तगी की एक मुसल्सल दास्तान मौजूद है।

मरियम जमीला 1934ई0 में न्यूयॉर्क के एक यहूदी घराने में पैदा हुईं। उनका पैदाइशी नाम डंतहतमज डंतबने था। बचपन ही से वह ग़ैर-मामूली ज़हनी सलाहीयतों की मालिक थीं और ज़िंदगी के बुनियादी सवालात पर ग़ौर करती थीं; मसलनः खुदा क्या है? इंसान क्यों पैदा हुआ है? ज़िंदगी का मक़सद क्या है? मौत के बाद क्या होगा? क्या जदीद तहज़ीब इंसान को वाक़ई खुशी और सुकून दे सकती है?!

जवानी में पहुँच कर उनकी ज़हनी बेचैनी मज़ीद बढ़ गई। जदीद मग़रिबी तहज़ीब की ज़ाहिरी तरक़्क़ी, साइंसी कामयाबियों और माद्दी सहूलतों के बावजूद उन्हें महसूस होता था कि इंसान के अंदर एक ख़ला मौजूद है। वह सोचने लगीं कि अगर जदीद तहज़ीब इंसान को हक़ीक़ी मानों में तरक़्क़ी-याफ़्ता बना चुकी है तो फिर इंसान इतने बड़े पैमाने पर ज़ुल्म, जंग और तबाही क्यों पैदा कर रहा है?

यही सवाल उन्हें विभिन्न मज़ाहिब के मुताला की तरफ़ ले गया। उन्होंने यहूदियत का मुताला किया, ईसाइयत के बारे में पढ़ा और मशरिक़ी मज़ाहिब की तरफ़ भी तवज्जो की लेकिन उनकी तलाश अभी किसी एक मज़हब पर आकर नहीं रुकती थी। वह मज़हब को महज़ मौरूसी शिनाख़्त के तौर पर क़ुबूल करने के बजाय अक़्ल और तजुर्बे की रोशनी में समझना चाहती थीं। उनकी शख़्सियत की एक अहम खुसूसियत यह थी कि वह किसी बात को सिर्फ़ इसलिए क़बूल करने के लिए तैयार नहीं थीं कि मुआशरा इसे दुरुस्त समझता है, वह खुद पढ़ती थीं, ग़ौर करती थीं, सवाल करती थीं और फिर नतीजे तक पहुँचती थीं।

इस्लाम के बारे में उनकी इब्तिदाई मालूमात बहुत सीमित और बाज़ औक़ात ग़लत तसव्वुरात पर मुब्नी थीं। इसलिए कि उन्होंने सेकंड-हैंड मालूमात की रोशनी में दीगर मज़ाहिब की तरह इस्लाम को भी एक ऐसे मज़हब के तौर पर देखा था कि वह जदीद ज़िंदगी से हम-आहंग नहीं लेकिन उनके अंदर मौजूद हक़ की तलाश ने उन्हें इस्लाम के बारे में बराह-ए-रास्त मुताला करने पर आमादा किया।

यहाँ से उनकी ज़िंदगी का एक निहायत अहम मरहला शुरू होता है। उन्होंने इस्लाम के बारे में विभिन्न किताबें और मज़ामीन पढ़ने शुरू किए। कुरआन मजीद का मुताला भी इसी जुस्तजू का हिस्सा बना और उन्हें महसूस हुआ कि कुरआन इंसान से बराह-ए-रास्त ख़िताब करता है, उसे कायनात पर ग़ौर करने, अपने वजूद पर सोचने, अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी महसूस करने और अपने ख़ालिक़ को पहचानने की दावत देता है। वह खुदा के ऐसे तसव्वुर की तलाश में थीं जो महज़ फ़लसफ़ियाना बहस का मौज़ू न हो बल्कि इंसानी ज़िंदगी से बराह-ए-रास्त तअल्लुक़ रखता हो। कुरआन ने उनके सामने अल्लाह का तसव्वुर एक ऐसे ख़ालिक़ के तौर पर पेश किया जो वाहिद है, बे-नियाज़ है, तमाम कायनात का मालिक है, इंसान को पैदा करने वाला है और उसके आमाल से बाख़बर है। इस तसव्वुर ने उनकी फ़िक्री तलाश को एक नई सिम्त दी।

कुरआन इंसान को न तो महज़ एक हैवानी मख़्लूक़ समझता है और न उसे खुदाई सिफ़ात का हामिल क़रार देता है। वह उसे अल्लाह का बंदा, ज़मीन पर ज़िम्मेदार मख़्लूक़ और अख़्लाक़ी इंतिख़ाब की सलाहीयत रखने वाला इंसान क़रार देता है। मरियम जमीला के लिए यह तसव्वुर निहायत अहम था, क्योंकि वह एक ऐसी तहज़ीब में रह रही थीं जहाँ इंसान की माद्दी आज़ादी तो बढ़ रही थी लेकिन रूहानी मक़सद और अख़्लाक़ी ज़िम्मेदारी का अहसास कमज़ोर होता जा रहा था।

कुरआन ने उन्हें बताया कि इंसानी ज़िंदगी का मक़सद सिर्फ़ दुनियावी क़ामयाबी नहीं बल्कि अल्लाह की

मारिफ़त, इबादत, अख़्लाक़ी पाकीज़गी और आख़िरत की जवाबदेही भी है। इस तसव्वुर ने उनकी ज़िंदगी के बुनियादी सवालात को एक मरबूत जवाब फ़राहम किया।

यहाँ एक निहायत अहम बात समझने की है कि मरियम जमीला की कुरआन से दिलचस्पी किसी एक ज़ाहिरी वाक़्ये का नतीजा नहीं थी बल्कि उनकी तवील फ़िक्री तलाश का मनतिक़ी (तार्किक) नतीजा थी। कुरआन उनके लिए महज़ एक मुक़द्दस किताब नहीं रहा बल्कि उन सवालात का जवाब बनने लगा जिन्हें वह बरसों से अपने अंदर लिए फिरती थीं। उन्हें कुरआन में खुदा, इंसान, कायनात, अख़्लाक़, ज़िंदगी, मौत और आख़िरत के बारे में एक मरबूत तसव्वुर मिला।

कुरआन का उसलूब भी उनके लिए ग़ैर–मामूली कशिश रखता था। उन्हें महसूस होता था कि कुरआन इंसान को महज़ मालूमात नहीं देता बल्कि उसके ज़मीर को झझोड़ता है। कभी वह कायनात की निशानियों की तरफ़ मतवज्जो करता है, कभी इंसान को उसके अपने वजूद पर ग़ौर करने को कहता है, कभी पिछली क़ौमों के वाक़्यात बयान करता है और कभी क़यामत के दिन इंसान की जवाबदेही का अहसास दिलाता है। इस अंदाज़–ए–ख़िताब ने उनके अंदर कुरआन के मज़ीद मुताले की ख़्वाहिश पैदा की।

उन्होंने कुरआन को सिर्फ़ तर्जुमा के ज़रिया समझने की कोशिश नहीं की बल्कि इस्लाम के बुनियादी माख़ज़ और इस्लामी तहज़ीब व फ़िक्र से मुतअल्लिक़ किताबें भी पढ़ीं। जूँ–जूँ मुताला बढ़ता गया, उनके अंदर यह अहसास मज़बूत होता गया कि इस्लाम मग़रिब में राइज उस तस्वीर से कहीं ज़्यादा वसी, गहरा और हमा–गीर मज़हब है जिससे वह पहले वाक़िफ़ थीं। इस्लाम ने उनके लिए अक़्ल और वही, रूहानियत और अमल, फ़र्द और मुआशरा, हक़ूक़ और ज़िम्मेदारी, दुनिया और आख़िरत के दरमियान एक जामे तवाज़ुन (संतुलन) पेश किया।

कुरआन से पैदा होने वाली यही दिलचस्पी बाद में उनकी अमली ज़िंदगी में भी ज़ाहिर हुई। वह इस्लाम के बारे में महज़ इल्मी मालूमात हासिल करके मुत्मइन नहीं हुईं बल्कि अपनी ज़िंदगी को भी इस्लामी तालीमात के मुताबिक़ ढालने की कोशिश करने लगीं। उनकी यह तब्दीली तदरीजी थी। पहले फ़िक्री क़बूलियत आई फिर इस्लामी तालीमात से क़ल्बी वाबस्तगी बढ़ी और आख़िरकार उन्होंने इस्लाम को अपने लिए ज़िंदगी का मुकम्मल रास्ता तस्लीम कर लिया।

उनके क़बूल–ए–इस्लाम के सफ़र में मौलाना अबुल आला मौदूदी (रह0) की तहरीरों और बाद में उनसे होने वाली ख़त व किताबत का भी अहम किरदार रहा। मरियम जमीला ने इस्लामी फ़िक्र, मग़रिबी तहज़ीब, जदीदियत, अख़्लाक़ और मज़हब के मौज़ूआत पर गहरी दिलचस्पी से मुताला किया था। मौलाना मौदूदी (रह0) की तहरीरों में उन्हें इस्लाम को एक मुकम्मल निज़ाम–ए–ज़िंदगी के तौर पर समझने का एक ऐसा मुनज़्ज़म अंदाज़ मिला जिसने उनके ज़हन को मज़ीद मुत्मईन किया। बाद में वह पाकिस्तान गईं और मौलाना मौदूदी (रह0) के ख़ानदान के साथ रहीं। वहीं उन्होंने अपने इल्मी और इस्लामी सफ़र को मज़ीद आगे बढ़ाया।

मरियम जमीला ने बाद में मुतअद्दिद किताबें लिखीं जिनमें मग़रिबी तहज़ीब और इस्लाम के तक़ाबुल, जदीदियत, मज़हब, अख़्लाक़ और इस्लामी मुआशरत के मौज़ूआत नुमायाँ हैं। उनकी तहरीरों का बुनियादी मुहर्रिक भी वही फ़िक्री सवालात थे जिन्होंने उन्हें कुरआन तक पहुँचाया था। उनके नज़रदीक इस्लाम महज़ चंद मज़हबी रुसूमात का नाम नहीं बल्कि इंसान की पूरी ज़िंदगी को अल्लाह की हिदायत के ताबे करने का नाम है।

उनके कुरआन से तअल्लुक़ का एक अहम पहलू यह भी था कि उन्होंने इस्लाम को इसके असल मसादिर (स्रोतों) से समझने की कोशिश की। वह सिर्फ़ मुसलमानों के तर्ज़–ए–अमल को देखकर इस्लाम के बारे में फ़ैसला करने के बजाय कुरआन और रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की सीरत को बुनियादी मेयार बनाना चाहती थीं। यह तर्ज़–ए–फ़िक्र उनकी इल्मी दियानत की अलामत था। वह जानती थीं कि किसी भी मज़हब का जायज़ा उसके मानने वालों के इनफ़िरादी नुक़ूश व नुक़ाइस की बुनियाद पर नहीं बल्कि उसकी असल तालीमात की बुनियाद पर लेना चाहिए।

इस्लाम की ख़ूबी यही है कि जो शख़्स भी सच्चे दिल से इसको समझने की कोशिश करता है तो फिर दुनिया का हर मज़हब उसकी निगाह में बे–मायना हो जाता है और जब वह इस्लाम में क़दम रखकर ईमान की बुलंदियों तक पहुँचता है तो ग़ैर–मामूली ख़िदमत का फ़र्ज़ भी अंजाम देता है, सहाबा किराम (रज़ि.) के अहद से लेकर आज तक इसकी मिसालें तारीख़ में मौजूद हैं। मरियम जमीला भी इसी सिलसिला की एक ज़रीं कड़ी हैं जिनके क़लम ने इस्लाम की ख़ूब तर्जुमानी की।

इल्हाद का तूफ़ान – सबब और हल

मोहम्मद नज्मुद्दीन नदवी

इल्हाद व लादीनियत के असबाब और वह फ़िक्र व नज़र जिनसे उसको ताक़त और मज़बूती हासिल हुई मग़रिब का मज़हबी तसव्वुर है। क़ुरून–ए–वुस्ता में ईसाई मज़हब की बालादस्ती और चर्च की गिरफ़्त निहायत मज़बूती से क़ायम रही, कलीसा का असर व इक़्तिदार इस क़दर था और पोप की पेशवाई और उसकी ताक़त व इक़्तिदार इतनी ठोस थी कि बड़े–बड़े शाहों की क़िस्मत का फ़ैसला चर्च में पोप करता था और एक तबक़ाती निज़ाम में पूरा मग़रिब जकड़ा हुआ था। यह ऐसा दौर था कि इसमें पोप का मज़हबी सरबराह की हैसियत से बादशाह पर हुक्म चलता था और उसके बरख़िलाफ़ पोप बादशाह के हुक्म का पाबंद नहीं था और मज़हबी किताबें या बाइबल पढ़ना भी मना था, सिर्फ़ मज़हबी लोग ही पढ़ सकते थे और हर वह इल्म व फ़िक्र जिसका महवर मज़हब और चर्च था। उस पर पाबंदी नहीं थी और जिसका सरचश्मा चर्च नहीं था, उस पर पाबंदी और शजर–ए–ममनूआ की मुहर लगी हुई थी। इल्म व फ़िक्र पर कलीसा का यह तसल्लुत निशात–ए–सानिया (Renaissance) के बाद भी क़ायम रहा।

एक अंग्रेज़ मुसन्निफ़ (Kenneth Neil Cameron) ने लिखा है:

"अठारहवीं सदी ईसवी तक मग़रिब की तमाम दर्सगाहें, कॉलेज और यूनिवर्सिटियाँ चर्च के ज़ेरे–निगरानी रहीं। कोई फ़र्द किसी दर्सगाह में या निजी तौर पर चर्च के लाइसेंस के बग़ैर तालीम नहीं दे सकता था।" (Humanity & Society: 227)

ईसाई दुनिया में एक फ़िक्री इंतिशार हुआ और इसी मज़हबी बग़ावत और ज़ेहनी व फ़िक्री इंतिशार की चक्की से जदीद दौर का आग़ाज़ हुआ और उसकी रोशनी ने बग़ावत की और इसी दौर में मग़रिबी इस्तिमार और साम्राजियत (Imperialism) का दौर शुरू हुआ। अब चर्च का तसल्लुत और उसका सियासी इक़्तिदार, मैदान–ए–अमल में ख़त्म हुआ और इसी दौर में मग़रिब और यूरोप में मज़हबी तालीमात और चर्च व गिरजाघरों के ख़िलाफ़ नफ़रत और बग़ावत की लहर आई।

इस तरह से मज़हब व पापाइयत से इल्म व फ़िक्र की सख़्त जंग हुई। चर्च ने इल्म व फ़िक्र की मुख़ालिफ़त की और अक़्ल–ए–इंसानी को इल्म व मआरिफ़त की रोशनी से महरूम रखने की बराबर जद्दोजहद की। ज़ुल्म व बरबरियत की तारीख़–ए–आलम के औराक़ में वह दास्तान रक़म की कि तारीख़–ए–इंसानी का सर शर्म से झुक कर रह गया। चर्च और इल्म व फ़िक्र के माबैन इख़्तिलाफ़ बढ़ता गया यहाँ तक कि यूरोप के लोगों में यह फ़िक्र पैदा होने लगी कि मज़हब इल्म का दुश्मन और मआरिफ़त व आगही का मुख़ालिफ़ है। ज़ाहिरी तौर पर यह यक़ीन हो चला कि मज़हब साइंसी और जदीद उलूम का मुक़ाबला कर नहीं सकता। यह फ़िक्र इसलिए पैदा हुई कि यूरोप में मज़हब को हुर्रियत–ए–फ़िक्र व नज़र और रोशनी–ए–इल्म व हुनर का दुश्मन समझा गया।

इसकी एक बुनियादी वजह यह बनी कि मग़रिब में जो मज़हब की नुमाइंदगी और उसके नुमाइंदे थे वही इस दुश्मनी के सबब बने और मज़हब और इल्म व फ़िक्र के दरमियान में ऐसी ख़लीज हाइल हुई कि मज़हब को इसमें शिकस्त व रेख़्त का सामना करना पड़ा और इल्म व फ़िक्र और जदीद साइंस को कामयाबी हासिल हुई और नए–नए नज़रिए वजूद–पज़ीर हुए जिससे रफ़्ता–रफ़्ता पूरी दुनिया उसकी गिरफ़्त में चली आई। साम्राजियत व इस्तिमार का दौर भी शुरू हुआ। बर्रेसग़ीर पर भी उसने अपना तसल्लुत क़ायम किया और दीगर अफ़्रीक़ी और मशरिक़–ए–बईद के मोमालिक तक साम्राजियत ने पूरी तरह अपना जाल बिछा दिया।

जदीद निज़ाम–ए–तालीम ने इर्तिदाद और इल्हाद व लादीनियत को फ़रोग़ देने के तईं इन मफ़रूज़ा नज़रियों का सहारा लिया कि पूरी दुनिया में लामज़हबियत और इल्हादियत का एक नया मज़हब व फ़िक्र सामने आ गया। ईसवी मज़हब ने यूरोप में और उसके तूल व अर्ज़ में बक़ा

की जद्दोजहद की लेकिन उसकी क़िस्मत की लकीर ने कलीसा के ज़वाल का फ़ैसला कर दिया और चर्च का ग़लबा जाता रहा, फ़िक्र–ए–इंसानी पर चर्च की आयद–कर्दा पाबंदियाँ पादर–ए–हवा हुईं। सत्रहवीं सदी में चर्च को सियासत व इक़्तिदार से जुदा कर दिया गया।

(The Century of Revolution: 181)

इस तरह अक़्लियत–पसंदी का दौर शुरू हुआ। यही यूरोप का शोहरत–पज़ीर और मक़बूल नज़रिया–ए–हयात बना कर पेश किया गया और मज़हब पस–ए–मंज़र में चला गया। बहरहाल ईसाई दुनिया में जिद्दत–पसंदी, अक़्लियत–पसंदी और क़दीम–पसंदी तीनों मैदान–ए–फ़िक्र व अमल में मौजूद हैं और अपने दायरा–ए–असर व नुफ़ूज़ की तौसीअ की कोशिश में हैं मगर हक़ीक़त यह है कि यह तीनों सिद्क़ व सच्चाई से हुनूज़ दूर हैं। सच्चाई और सिद्क़ व हक़ीक़त को पाने के लिए इस्लाम के दरवाज़े तक आना नागुज़ीर है, जो इंसानी दुनिया का वाहिद सच्चा मज़हब है जो हमागीर व आलमगीर और कामिल दीन और मुकम्मल निज़ाम–ए–हयात है।

मज़हब के लादीनियत और इल्हाद की तरफ़ सफ़र में जो असबाब हैं उनमें जदीद मग़रिबी मुफ़क्किरीन और फ़लसफ़ा का मज़हब का तसव्वुर सिर्फ़ वह मसीहियत है जो चर्च के ज़ेरे–साया और पोप की पेशवाई में फली–फूली, उन्हें इस्लाम की बिल्कुल ख़बर नहीं क्योंकि इस्लाम में इल्म व फ़िक्र के दरवाज़े कभी बंद नहीं हुए और हर शोबा–ए–ज़िंदगी पर मुहीत और हर–हर गोशे के तईं रिवायती, अक़्ली और मन्तिक़ी इस्तिदलाल और मुतवाज़िन क़ानून अपने पास रखता है।

यूरोप में फ़िक्र व नज़र और इल्म व आगही की आज़ादी ने मज़हब का एतिबार व वक़ार गिरा दिया। इसी ने मज़हब–मुख़ालिफ़ अनासिर को वजूद बख़्शा। यहीं से दहरियत की राह हमवार हुई। ख़ुदा को इख़्तियारात से महरूम रखा गया। ख़ुदा के फ़रिस्तादा की ज़रूरत बे–मानी होकर रह गई। सिनअती इंक़िलाब के अहद में इक़्तिसादी तरक़्क़ी ने मुआशरे को बेशुमार मसाइल व मुश्किलात से दोचार कर दिया और उनके हल के लिए नए मुआशरती निज़ाम और सियासी तसव्वुर पेश हुए। मुख़्तलिफ़ अफ़कार और नए रुजहानात ने राह पाने की कोशिश की मगर यह सब बे–मानी होकर रह गए। उनमें दो बड़े ख़तरनाक रुजहान व फ़िक्र हैं;

(1) सेक्युलरिज़्म (Secularism)

(2) मॉडर्निज़्म (Modernism)

यह मुस्लिम उम्मत के एतक़ादी, फ़िक्री व नज़रियाती और अमली किरदार की बेख़–कुनी कर रहे हैं और इल्हाद और लादीनियत के पौधों को सींचकर बड़ा कर रहे हैं। सेक्युलरिज़्म से साइंस और फ़लसफ़ा ने अपनी शिकस्त तस्लीम कर ली। सेक्युलरिज़्म ने सियासत व मआशियत और मुआशरती ख़ूबियों को तह व बाला करके रख दिया। गुज़िश्ता हफ़्तों में एक ख़बर ज़ाफ़रानी गिरोह के सरबराह की नशर हुई कि एल.जी.बी.टी. कम्युनिटी की हिमायत की और उसे समाज का हिस्सा क़रार दिया। यह सेक्युलरिज़्म की इल्हादी फ़िक्र की आबियारी का शाख़साना है। अब बाक़ायदा यूरोप व अमेरिका ही नहीं दीगर मोमालिक में भी इसकी तहरीक जारी है जबकि यह मज़हब के सरासर ख़िलाफ़ और इल्हाद व लादीनियत है और यह सेक्युलरिज़्म का फ़ैज़ है।

सेक्युलरिज़्म एक निज़ाम–ए–फ़िक्र व अमल है, इस निज़ाम की असास ही इस पर है कि दीन को ज़िंदगी और सियासत से जुदा कर दिया जाए। इसकी इब्तिदा क्योंकर हुई तो यह साफ़ तौर पर मालूम है कि मग़रिब में तहरीक–ए–इस्लाह–ए–मज़हब के बाद वजूद–पज़ीर हुआ और उसने दीन और दुनिया को अलग ख़ानों में बाँट दिया। दुनिया के मज़ाहिब ने सेक्युलरिज़्म को इसलिए क़बूल कर लिया कि उनके मज़ाहिब व अदयान तग़य्युर–पज़ीर दुनिया और जीती–जागती ज़िंदगी का साथ नहीं दे सकते।

मग़रिब के अहल–ए–इल्म व क़लम ने यह बात मनवाने की पूरी कोशिश की है कि इस्लाम का हाल भी यही है और इसके लिए इस्लामी तालीमात, शरीअत और तारीख़ को मस्ख़ करने का काम हुनूज़ जारी है, मगर इस्लाम जामिद मज़हब नहीं, वह ज़िंदा, हरदम रवाँ और हरदम जवाँ है। उसके अंदर तग़य्युर–पज़ीर इंसानी दुनिया का साथ देने की पूरी सलाहियत है। तमाम शोबा–ए–हयात में पूरी क़ानूनी और अख़्लाक़ी रहनुमाई का सहीफ़ा उसके पास महफ़ूज़ है। यह जिस तरह माज़ी का मज़हब था, हाल का भी है और मुस्तक़बिल की उम्मीद भी इसी इस्लाम के साए में आकर हासिल होती है क्योंकि यह एक हमागीर और दाइमी और कामिल–तरीन दीन है।

इब्तिला व आज़माइश में उस्वा-ए-नबवी (स०अ०व०)

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

अल्लाह तआला ने इस दुनिया को आज़माइश और इम्तिहान की जगह बनाया है, जज़ा और बक़ा की जगह नहीं। यहाँ इंसान को क़दम–क़दम पर मुख़्तलिफ़ आज़माइशों से गुज़रना पड़ता है; कभी नेमत व आसाइश के ज़रिए, कभी फ़क्र व फ़ाक़ा और तंगदस्ती के ज़रिए, कभी सेहत व आफ़ियत के ज़रिए और कभी बीमारी व तकलीफ़ में मुब्तिला करके, कभी ख़ुशी व मसर्रत के लम्हात अता करके और कभी ग़म व अंदोह और मुसीबतों से दोचार करके। इन आज़माइशों का मक़सद यह है कि सच्चाई और झूठ, ईमान और निफ़ाक़, सब्र और नाशुक्री के दरमियान फ़र्क़ नुमायाँ हो जाए और हर शख़्स के बातिन की हक़ीक़त ज़ाहिर हो जाए।

अल्लाह तआला फ़रमाता है:

"ताकि अल्लाह नापाक को पाक से अलग कर दे और नापाक चीज़ों को एक–दूसरे पर रखकर उनका ढेर बना दे, फिर उसे जहन्नम में डाल दे, यही लोग ख़सारा उठाने वाले हैं।" (अल–अनफ़ाल: 37)

दूसरी जगह फ़रमाया:

"और हम ज़रूर तुम्हें किसी क़दर ख़ौफ़, भूख और मालों, जानों और फलों की कमी से आज़माएँगे और सब्र करने वालों को ख़ुशख़बरी सुना दीजिए।"

एक और मक़ाम पर फ़रमाया:

"अलिफ़ लाम मीम; क्या लोगों ने यह समझ रखा है कि वह सिर्फ़ यह कहने पर छोड़ दिए जाएँगे कि हम ईमान लाए और उनकी आज़माइश नहीं की जाएगी और हमने उन लोगों को भी आज़माया था जो उनसे पहले गुज़र चुके हैं। पस अल्लाह ज़रूर उन लोगों को ज़ाहिर कर देगा जो सच्चे हैं और उन लोगों को भी ज़ाहिर कर देगा जो झूठे हैं।" (अल–अनकबूत: 1–3)

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने भी इस हक़ीक़त को वाज़ेह फ़रमाया कि इब्तिला व आज़माइश सालिहीन की ज़िंदगी का लाज़िमी हिस्सा है। आप (स0अ0व0) से पूछा गया:

"लोगों में सबसे ज़्यादा सख़्त आज़माइश किसकी होती है?"

आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया: "अंबिया की, फिर उन लोगों की जो उनके ज़्यादा क़रीब हों, फिर जो उनके ज़्यादा क़रीब हों। इंसान को उसके दीन के मुताबिक़ आज़माया जाता है; अगर उसका दीन मज़बूत हो तो उसकी आज़माइश भी सख़्त होती है और अगर उसके दीन में कमज़ोरी हो तो उसे उसी के मुताबिक़ आज़माया जाता है। चुनाँचे आज़माइश बंदे के साथ मुसलसल रहती है, यहाँ तक कि वह ज़मीन पर इस हाल में चलता है कि उस पर कोई गुनाह बाक़ी नहीं रहता।" (इब्ने हब्बान)

चुनाँचे बंदा जितना अपने रब के क़रीब होता है, उतना ही उसकी ज़िंदगी में आज़माइशों का हिस्सा बढ़ता जाता है। हालांकि ये आज़माइशें महज़ तकलीफ़ और अज़ीयत का नाम नहीं बल्कि रब्बानी तरबियत का एक ज़रिया भी हैं। इन्हीं के ज़रिए अल्लाह तआला अपने बंदों के दर्जे बुलंद फ़रमाता है। उनके गुनाहों को मिटाता है। उनके ईमान को जिला बख़्शता है और उन्हें सब्र, तवक्कुल, रज़ा और अपने क़ुर्ब की हक़ीक़त से आशना करता है।

अंबिया–ए–किराम (अलैहिमुस्सलाम) और अल्लाह के नेक बंदों की ज़िंदगियों में आज़माइशों के मुक़ाबले में सब्र व इस्तिक़ामत की ऐसी रोशन मिसालें मिलती हैं जो रहती दुनिया तक अहले ईमान के लिए मशअले राह बनी रहेंगी।

हज़रत अय्यूब (अलैहिस्सलाम) को बीमारी, माल व दौलत और अहल व अयाल के फ़ुक़दान के ज़रिए सख़्त आज़माइश में मुब्तिला किया गया मगर मुसीबतों के तवील सिलसिले ने उनके अज़्म को मुतज़लज़िल न किया और तकलीफ़ों के तूफ़ान उनके दिल से उम्मीद का चिराग़ न बुझा सके। उन्होंने अपने रब के हुज़ूर निहायत अदब, आजिज़ी और मुहब्बत के साथ अर्ज़ किया:

"ऐ मेरे रब! मुझे तकलीफ़ पहुँच गई है और तू सबसे बढ़कर रहम करने वाला है।" (अल–अंबिया: 83)

यह पुकार बारगाहे रहमत तक पहुँची। अल्लाह तआला ने उनकी दुआ क़ुबूल फ़रमाई। उनकी तकलीफ़ दूर कर दी और उनकी हालत को दोबारा ख़ुशहाली से बदल दिया। इरशाद फ़रमाया:

"फिर हमने उनकी दुआ सुन ली और उनकी सब तकलीफ़ दूर कर दी और उनके घर वाले उन्हें दे दिए और उनके साथ उतना ही और दिया अपनी ख़ास रहमत से और ताकि इबादतगुज़ारों के लिए नसीहत रहे।"

इसी तरह हज़रत याकूब (अलैहिस्सलाम) ने अपने महबूब फ़रज़ंद हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) की जुदाई का ग़म बरसों अपने सीने में लिए रखा। आँखें अश्कबार रहीं, दिल ग़म से निढाल रहा, यहाँ तक कि मुसलसल गिरया करते–करते उनकी बीनाई भी मुतास्सिर हो गई मगर ज़बान पर शिकवा नहीं आया। उन्होंने फ़रमायाः

"पस सब्र ही बेहतर है और जो कुछ तुम बयान करते हो उस पर अल्लाह ही से मदद माँगी जा सकती है।" (यूसुफ़ः 18)

बिलआख़िर सब्र व इस्तिक़ामत की यह तवील दास्तान विसाल और ख़ुशी पर मुन्तज हुई और अल्लाह तआला ने हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) को उनके वालिद की आग़ोश में वापस पहुँचा दिया। यूँ बरसों के ग़म के बाद जुदाई की रात ख़त्म हुई और विसाल की सुबह तुलू हुई।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) सब्र व इस्तिक़ामत के बे–मिसाल पैकर थे। अगर सब्र व इस्तिक़ामत और सबात का पैकर मुजस्सम देखना हो तो सीरत–ए–मुहम्मद अरबी (स0अ0व0) से बढ़कर कोई पैकर नहीं हो सकता।

आप (स0अ0व0) ने दावत–ए–हक़ की राह में ऐसी–ऐसी अज़ीयतें बर्दाश्त कीं जिनके तसव्वुर से भी दिल काँप उठता है, लेकिन आप (स0अ0व0) के पाए सबात में कभी जुंबिश न हुई और न ही आप (स0अ0व0) के माथे पर कभी शिकन नुमायाँ हुई और न ही अपने मिशन से एक लम्हे के लिए पीछे हटना आप (स0अ0व0) ने गवारा किया।

एक मर्तबा आप (स0अ0व0) बैतुल्लाह में नमाज़ अदा फ़रमा रहे थे। सज्दे में थे कि एक मुश्रिक उक़बा बिन अबी मुऐत ऊँट की ओझड़ी लाकर आप (स0अ0व0) की पुश्त–ए–मुबारक पर डाल देता है। बोझ की शिद्दत के बाइस आप (स0अ0व0) अपना सर मुबारक न उठा सके। एक दूसरे मौक़े पर आप (स0अ0व0) नमाज़ में मशगूल थे तो इसी बदबख़्त ने आप (स0अ0व0) का गला मुबारक सख़्ती से दबाने की कोशिश की मगर ज़ुल्म व सितम की यह आँधियाँ उस पहाड़ को न हिला सकीं जिसे अल्लाह तआला ने रिसालत, यक़ीन और सब्र व इस्तिक़ामत की कुव्वत अता फ़रमाई थी।

आप (स0अ0व0) ने बचपन ही में वालिदा की जुदाई का सदमा बर्दाश्त किया। फिर दादा की वफ़ात का ग़म सहा और जवानी में अपने शफ़ीक़ चचा हज़रत अबू तालिब और वफ़ादार रफ़ीक़ा–ए–हयात हज़रत ख़दीजा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की वफ़ात का दुख बर्दाश्त किया। ज़िंदगी के आख़िरी दौर में अपने साहिबज़ादों और साहिबज़ादियों की जुदाई के सदमात भी बर्दाश्त किए लेकिन हर मरहले पर सब्र, रज़ा, तवक्कुल और अल्लाह से ताल्लुक़ का दामन मज़बूती से थामे रखा।

ग़ज़वात और दावती जद्दोजहद के दौरान भी आप (स0अ0व0) को बेशुमार तकलीफ़ात और मसाइब का सामना करना पड़ा। हज़रत आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने एक मर्तबा पूछाः "या रसूलल्लाह! क्या आपकी ज़िंदगी में उहद के दिन से भी ज़्यादा सख़्त कोई दिन आया है?" आप (स0अ0व0) ने फ़रमाया कि मुझे तुम्हारी क़ौम की तरफ़ से बहुत कुछ बर्दाश्त करना पड़ा लेकिन सबसे सख़्त दिन ताइफ़ का दिन था। जब मैंने ताइफ़ के सरदारों के सामने दावते हक़ पेश की मगर उन्होंने न सिर्फ़ दावत कुबूल करने से इनकार किया बल्कि इंतिहाई संगदिलाना सुलूक किया। इसी मौक़े पर अल्लाह तआला ने पहाड़ों के फ़रिश्ते को आप (स0अ0व0) की ख़िदमत में भेजा। उसने अर्ज़ किया कि अगर आप चाहें तो मैं दोनों पहाड़ों को उन पर मिला दूँ लेकिन रहमतुल्लिलआलमीन (स0अ0व0) की ज़बान मुबारक से इंतिक़ाम के बजाय उम्मीद के अल्फ़ाज़ निकले, फ़रमायाः "मुझे उम्मीद है कि अल्लाह तआला उनकी नस्लों से ऐसे लोग पैदा फ़रमाएगा जो सिर्फ़ अल्लाह की इबादत करेंगे और उसके साथ किसी को शरीक नहीं ठहराएँगे।"

यही वह मक़ाम है जहाँ आज़माइश इंसान की शख़्सियत को बुलंदी अता करती है, जहाँ मज़लूम इंतिक़ाम की कुदरत रखने के बावजूद रहमत को इख़्तियार करता है, जहाँ ज़ख़्म नफ़रत को जन्म देने के बजाय दिल में ख़ैरख़्वाही का चश्मा जारी कर देते हैं और जहाँ ज़ुल्म सहने वाला अपने दुश्मन के लिए भी हिदायत की दुआ करता है। यानि आज़माइश मोमिन के लिए महज़ एक मुश्किल मरहला नहीं बल्कि अल्लाह तआला की तरफ़ से एक तरबियती सफ़र है। यह इंसान के ईमान को परखती, उसके किरदार को निखारती और उसके बातिन को सँवारती है। कामयाब वह नहीं जिसकी ज़िंदगी आज़माइशों से ख़ाली हो बल्कि कामयाब वह है जो आज़माइश के हर मरहले में ईमान को थामे रखे, सब्र का दामन न छोड़े, अल्लाह तआला से अपना ताल्लुक़ मज़बूत करे और हालात के अँधेरों में भी उसकी रहमत से उम्मीद वाबस्ता रखे।

अमीन-ए-हरम

मुहम्मद मुसअब नदवी

मक्का की संगलाख़ वादियों में घमासान की जंग छिड़ने वाली है, फ़िज़ा सोगवार है, हर तरफ़ हलचल मची हुई है। क़ुरैश के मुख़्तलिफ़ क़बाइल ने बैतुल्लाह की तामीर में हिस्सा लिया था। पत्थर उठाए जा रहे थे। दीवारें बुलंद हो रही थीं और मक्का के सीने में एक मुक़द्दस इमारत तामीर हो रही थी। वही इमारत जिसको हमारे और आपके सरदार अबुल–अंबिया हज़रत इब्राहीम (अलैहिस्सलाम) और आपके बेटे हज़रत इस्माईल (अलैहिस्सलाम) ने तामीर किया था। उस इमारत की तामीर हुए एक लंबा अरसा गुज़र चुका था। गर्दिश–ए–लैल व नहार ने उसकी दीवारों को कमज़ोर कर दिया था। छत गिर चुकी थी। अब क़ुरैश वाले उस मुक़द्दस इमारत को फिर से तामीर कर रहे हैं। हर क़बीला इज़्ज़त व शर्फ़ हासिल करने के लिए उसकी तामीर में हिस्सा ले रहा है। मगर तामीर अभी मुकम्मल न हुई थी कि एक बड़ा मसला दरपेश आ गया। वह था हजरे असवद को उसकी जगह पर रखने का। यही वह मरहला था जिसका इंतिज़ार सब कर रहे थे, मगर किसी को क्या ख़बर थी कि यही लम्हा सारे मक्का को ख़ून के दरिया के क़रीब लाकर खड़ा कर देगा। हर क़बीला चाहता था कि हजरे असवद को उठाकर काबा की दीवार में नस्ब करने का शर्फ़ उसे मिले।

यह सिर्फ़ एक पत्थर रखने की बात न थी, यह शर्फ़ था। यह क़बाइली इज़्ज़त थी। यह आने वाली नस्लों के लिए फ़ख्र का उनवान था। चुनाँचे बनू अब्दुद्दार ने कहा: "यह हक़ हमारा है!" बनू अदी भी पीछे न रहे, दूसरे क़बाइल ने भी अपना हक़ जताना शुरू कर दिया।

बात बढ़ती गई, आवाज़ें बुलंद हुईं, चेहरे सुर्ख़ होने लगे, तलवारें न्याम से बाहर आने को बेताब होने लगीं। क़ुरैश के बड़े–बड़े सरदार एक–दूसरे के सामने आ खड़े हुए। मक्का की फ़िज़ा में ख़तरे की बू फैल गई है।

एक पत्थर रखने का मसला है, मगर अब सवाल यह है कि पत्थर कौन रखेगा? और अगर फ़ैसला न हुआ तो जंग ही फ़ैसला कर सकती है। जंग करना, ख़ून में नहाना मक्का वालों के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। वह तो मामूली–मामूली बातों पर लड़ते हैं। सालों–साल तक लड़ा करते हैं। मुस्तक़िल दुश्मनी बरक़रार रखने का हुनर उन्हें खूब आता है। किसी का ऊँट पहले पानी पी ले, किसी का घोड़ा आगे निकल जाए, इन बातों पर लड़ने वाली क़ौम इतने बड़े शर्फ़ को कैसे बग़ैर जंग के छोड़ सकती है?!

कहा जाता है कि क़ुरैश के क़बाइल इस मौक़े पर जंग में कट मरने पर अहद करने लगे। एक क़बीला तो ख़ून का प्याला लेकर आया और उसमें हाथ डालकर इस बात का अज़्म किया कि वह अपने हक़ से पीछे नहीं हटेगा। मक्का की सरज़मीन ने बहुत सी जंगे देखीं थी, मगर यह अजीब मआरका है। जंग किसी ज़मीन, सल्तनत या दौलत के लिए नहीं है, एक मुक़द्दस पत्थर को रखने के शर्फ़ के लिए है।

चार दिन गुज़र गए हैं, पाँचवाँ दिन आ गया है, मगर इख़्तिलाफ़ ख़त्म होने का नाम नहीं ले रहा है। कुछ अक़्लमंद और दानिश्वर लोग इस हालत को देखकर फ़िक्रमंद हो उठे। पिछली जंगों ने मक्का वालों को बहुत नुक़सान पहुँचाया था और यह जंग मक्का की तारीख़ में सबसे बड़ी और ख़ौफ़नाक जंग होगी। सारा मक्का ख़ून में डूब जाएगा।

आख़िरकार एक बुज़ुर्ग ने, जिनका नाम अबू उमैय्या बिन मुग़ीरा मख़ज़ूमी था, एक ऐसी तजवीज़ पेश की जिसने सबको एक लम्हे के लिए ख़ामोश कर दिया। उन्होंने कहा:

"ऐ क़ुरैश! अपने इख़्तिलाफ़ का फ़ैसला उस शख़्स से कराओ जो सबसे पहले मस्जिद के दरवाज़े से तुम्हारे पास दाख़िल हो।"

सबने यह बात मान ली। अब फ़ैसला इंसानों के हाथ से निकलकर तक़दीर के सुपुर्द हो गया था। सबकी निगाहें मस्जिद के दरवाज़े की तरफ़ जम गईं। वक़्त गुज़र रहा है। ख़ामोशी गहरी होती जा रही है। हर शख़्स सोच रहा है; कौन आएगा? कौन इस झगड़े का फ़ैसला करेगा?

कौन यह तय करेगा कि हजरे असवद किस क़बीले के हाथों उठेगा?!

अचानक—दूर से एक शख़्सियत नुमायाँ होती है। निगाहें उस तरफ़ उठीं और फिर एक ही लम्हे में सारा मजमा पुकारने लगाः "यह मुहम्मद हैं!" किसी ने कहाः "यह तो अमीन हैं!" और सब एक ज़बान होकर कहने लगेः "हम उनके फ़ैसले पर राज़ी हैं!"

वह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (स0अ0व0) थे। वही मुहम्मद (स0अ0व0) जिन्हें मक्का ने नुबुव्वत से पहले ही सादिक़ और अमीन तस्लीम कर लिया था। क्या अजीब मंज़र था! चंद लम्हे पहले तक कुरैश के क़बाइल एक—दूसरे के खून के प्यासे थे और अब सबकी उम्मीदें एक ही शख़्स से वाबस्ता हो गई थीं।

आप (स0अ0व0) ने लोगों के चेहरों को ग़ौर से देखा और फिर आप (स0अ0व0) ने सूरत—ए—हाल को समझकर ऐसा फ़ैसला फ़रमाया जिसने तारीख़ को भी हैरान कर दिया। आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "एक चादर लाओ।" चादर लाई गई। आप (स0अ0व0) ने उसे ज़मीन पर बिछाया, फिर हजरे असवद को अपने मुबारक हाथों से उठाया और चादर के बीच में रख दिया। अब आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः

"हर क़बीले का सरदार चादर का एक—एक किनारा पकड़ ले।"

क़बाइल के सरदार आगे बढ़े। वही लोग जो कुछ देर पहले एक—दूसरे के मुक़ाबिल खड़े थे, अब एक ही चादर के इर्द—गिर्द खड़े थे। चादर बुलंद हुई। हजरे असवद बुलंद हुआ। हर क़बीले के हाथ में इस मुक़द्दस शर्फ़ का हिस्सा आ गया और जब हजरे असवद काबा की दीवार के बराबर पहुँच गया तो—मुहम्मद (स0अ0व0) ने उसे अपने दस्ते मुबारक से उठाया और उसको उसके मक़ाम पर रख दिया।

बस! इतना—सा फ़ैसला, मगर इस फ़ैसले ने एक ऐसी जंग रोक दी जिसका अंजाम बहुत बुरा होने वाला था। न बनू अब्दुद्दार की इज़्ज़त गई, न दूसरे क़बाइल की, न किसी को शिकस्त हुई, न किसी को ज़िल्लत। सब शरीक हो गए और दुनिया के सबसे बड़े हकीम व दाना शख़्स ने हकीमाना फ़ैसला कर दिया। अपनी हिकमत व दानिश्वरी से एक बड़ी जंग टाल दी। आप (स0अ0व0) ने सिर्फ़ हजरे असवद को उसके मक़ाम पर नहीं रखा था बल्कि आप (स0अ0व0) ने तलवारों के दरमियान सुलह करा दी थी। ख़ानदानी असबियत, क़बाइली गुरूर, किब्र व नख़वत के बीच इंसाफ़ रख दिया था।

ज़रा इस मंज़र को ध्यान में लाइए। एक तरफ़ कुरैश के बड़े—बड़े सरदार, क़बाइली गुरूर, बिजली की तरह कौंद रही तलवारें, आँखों में गुस्सा; दूसरी तरफ़ एक ऐसा शख़्स जिसके पास न बादशाही थी, न लश्कर, न हुकूमत, मगर मक्का के दिलों पर उसकी अमानत का ऐसा इक़्तिदार था कि सबने एक ज़बान होकर कहाः "यह मुहम्मद हैं........यह अमीन हैं!"

और उस दिन मक्का ने पहली बार यह मंज़र देखा था कि एक इंसान बग़ैर ताज के बादशाहों से ज़्यादा बावक़ार, बग़ैर लश्कर के लश्करों से ज़्यादा ताक़तवर और बग़ैर किसी हुकूमत के दिलों पर हुकूमत कर रहा है।

यह वाक़्या उस वक़्त पेश आया जब अभी वही नाज़िल नहीं हुई थी। अभी नुबूव्वत का ऐलान नहीं हुआ था। अभी कुरआन की एक आयत भी नाज़िल नहीं हुई थी। लेकिन मुहम्मद (स0अ0व0) की सच्चाई, अमानत और हिकमत ने मक्का के दिलों में अपना मक़ाम बना लिया था।

और फिर तारीख़ ने देखा कि वही मुहम्मद (स0अ0व0), जिनके फ़ैसले पर कुरैश ने सर तस्लीम किया, मुश्किल वक़्त में जिनको अपना हाकिम बनाया, जिनको वह सादिक़ और अमीन कहते थे, जब उन्होंने अपनी नुबुव्वत का ऐलान किया, तौहीद की सदा बुलंद की तो यही कुरैश उनके जानी दुश्मन हो गए। उनकी राह में रुकावटें डालने लगे। और फिर वह वक़्त भी आया' फ़लक गवाह है, तारीख़ क़लमबंद करती है कि जिसने नुबुव्वत से पहले उन्हें अपनी हिकमत व दानाई से झगड़े से बाहर निकाला था, हर ख़ानदान को इज़्ज़त दी थी, सबको एक ही चादर के इर्द—गिर्द जमा कर दिया था, उसी नबी ने नुबूव्वत के बाद अरब के मुंतशिर क़बाइल को कलिमा—ए—तौहीद के इर्द—गिर्द जमा कर दिया, उनके अंदर रहम, उखुव्वत व मुहब्बत पैदा कर दी, उनको तौहीद का परस्तार बना दिया, ज़र्रात को माह व अन्जुम कर दिया।

आप सीरत का मुतालआ कीजिए तो सारे आलम का सबसे अज़ीम, सबसे बा—असर, सबसे ज़्यादा अद्ल व इंसाफ़ करने वाला, सबसे ज़्यादा हकीम व दाना शख़्स हज़रत मुहम्मद (स0अ0व0) की ज़ात पाएँगे। यही वह ज़ात है जिसकी ज़िंदगी का हर गोशा सारी दुनिया के लिए, क्या अरब, क्या अजम, क्या हिंदू, क्या मुस्लिम, क्या यहूदी, क्या नस्रानी, सबके लिए मशअले राह है, बस कोई रोशनी हासिल करने वाला हो।

रसूलुल्लाह (स०अ०व०) और इन्सानियत साज़ी का फ़न

मुहम्मद अरमग़ान बदायूनी नदवी

इतिहास और सीरत की किताबों से पता चलता है कि बेअसत से पहले इंसानी दुनिया पूरी तरह खुदकुशी पर आमादा थी। जाहिलाना घमंड, कबाइली तास्सुब (पक्षपात), बदले की भावना, ताकत का नशा, कमज़ोरों का शोषण, गुलामों पर जुल्म और नैतिक अराजकता अपनी इंतिहा को पहुँची हुई थी। न तो खून के रिश्तों का कोई पवित्र सम्मान था और न ही नाते–रिश्तेदारों का कोई ख़्याल। पूरी की पूरी कौमें शराब, जुए, सट्टे और पासे जैसी गंदी चीज़ों की शौकीन थीं। ख़ास तौर पर मक्का की वह ज़मीन जहाँ आखिरी नबी (स0अ0व0) को भेजा जाना था, अगर वहाँ पाँच क़लम भी तलाश किये जाते, तो शायद मिलना मुश्किल होते, जैसे कि उनके पतन का यह आख़िरी छोर था।

नबी–ए–रहमत (स0अ0व0) जब इस दुनिया में तशरीफ़ लाए, तो आपने इस सड़े हुए समाज के सुधार के लिए वही तरीक़ा अपनाया जो पैगंबरों (अलैहिस्सलाम) की विशेषता रही है। उन्होंने हुकूमतों और तंजीमों (संगठन) की तरह लंबे–चौड़े दस्तूर और कानून नहीं बनाए। फौजी ताकत को मजबूत करने की जद्दोजहद नहीं की। कानूनसाज़ असेंबलियाँ तश्कील (गठित) नहीं कीं। अपराधियों और लुटेरों की रोकथाम के लिए चौकियाँ नहीं बनाईं। इल्म (ज्ञान) की शमा को रोशन करने से पहले किसी यूनिवर्सिटी की बुनियाद नहीं डाली और साधनों से महरूम दुनिया को दुनियावी तोहफों से नहीं नवाज़ा, बल्कि आपने सबसे पहले उस "इंसान" को अपना मौज़ू (विषय) बनाया जो खुदा–फरामोशी (खुदा को भुला देने) की सजा में खुद–फरामोशी (खुद को भुला देने) की सज़ा भुगत रहा था। आपने इंसान की बेमक़सद जिंदगी को एक रुख़ अता किया। उसके अंदर सही यकीन पैदा किया। उसकी नेक इच्छाओं, उच्च योग्यताओं और बुलंद चरित्र व किरदार को रचनात्मक दिशा दी।

आपने इंसानियत की तामीर के मामले में अक़ीदा–ए–तौहीद (एकेश्वरवाद) को बुनियाद बनाया और इसके ज़रिए इंसानियत को उसका खोया हुआ सम्मान वापस दिया। उसके अंदर आत्मविश्वास की सिफ़त पैदा की और उसे यह यकीन दिलाया कि वह इस दुनिया में किसी भी ताकत का ताबे और गुलाम नहीं। बल्कि यह पूरी कायनात उसकी ख़ादिम है और वह इस दुनिया में सिर्फ अपने खालिक–ए–हकीकी (सच्चे रचनाकार) के सामने सज्दा करने का पाबंद है। यह वह बुनियाद थी जिसने इंसानियत को इज़्ज़त–ओ–शर्फ की अत्यधिक बुलंदियाँ अता कीं। इंसानों को इंसानों की गुलामी से निजात दिलाई और उसे एक खुली फिज़ा में आज़ाद सांस लेने का मौका नसीब हुआ।

नबी–ए–अकरम (स0अ0व0) ने इस बुनियाद पर इंसानियत को इकट्ठा करने के बाद लोगों की कुदरती खूबियों और ज़ाती ओसाफ (गुणों) व कमालात को एक नेक मक़सद अता किया, ताकि इंसान की एनर्जी बर्बादी के बजाय इंसानियत की तामीर के कामों में खर्च हो। आपने यह ऐलान फरमाया:

الناس معادن كمعادن الذہب والفضـــــــة خيارہم فی الجاهلية خيارهم فی الإسلام إذا فقهوا

"लोग सोने और चांदी की खानों की तरह अलग–अलग स्वभाव और योग्यताओं के हामिल हैं, जो लोग जाहिलियत में अपने गुणों और खूबियों के ऐतबार से बेहतर थे। इस्लाम कबूल करने के बाद भी वे बेहतर ही रहते हैं, बशर्ते कि वे दीन की समझ–बूझ हासिल कर लें।" (सही बुख़ारी)

इस तफ़सील की रोशनी में अगर सहाबा–ए–किराम (रज़ि0) की जिंदगी का सरसरी जायज़ा लिया जाए, तो अंदाज़ा होता है कि जिस सहाबी में कुदरती तौर पर जो खूबी पाई जाती थी, आपने उसको ख़त्म करने के बजाय एक सही रुख अता कर दिया। फिर ज़ाहिर आँखों ने इसके असाधारण परिणामों का मुशाहदा (अवलोकन) किया; मिसाल के तौर पर: हज़रत अबू बक्र सिद्दीक (रज़ि0) की नरमी और इल्मुल–अन्साब (वंश–विज्ञान) में उनकी महारत, हज़रत उमर फारूक (रज़ि0) की जुर्रत और बेबाकी, हज़रत उस्मान (रज़ि0) की हया और सख़ावत (उदारता) का जज़्बा, हज़रत अली (रज़ि0) की शुजाअत और दिलेरी, हजरत खालिद बिन वलीद (रज़ि0)

का जंगी जौहर, और हज़रत हसन (रज़ि0) का शायराना मिज़ाज।

आप (स0अ0व0) के तरबियत के अंदाज़ में यह बात ख़ास तौर पर नुमायाँ नज़र आती है कि आप सीधे तौर पर किसी शख़्स को मलामत (दोषारोपण) का निशाना नहीं बनाते थे, बल्कि उसके अंदर उस बुराई से नफ़रत पैदा फ़रमाते थे जिसका वह शिकार हो और उसके ज़मीर को बेदार करते थे। अगर कोई गलत बात देखते तो ऐसे नर्म उस्लूबी से इस्लाह फरमाते कि किसी की दिल–आज़ारी न हो। इसी इसलिए आमतौर पर किसी का नाम लिए बिना इस्लाह का आम अंदाज़ इख़्तियार फ़रमाते।

आप (स0अ0व0) की अफ़राद–साज़ी (व्यक्ति निर्माण) का एक हुनर यह भी था कि आप अपने हर सहाबी पर भरोसा करते और उसके साथ असाधारण मुहब्बत का इज़हार फरमाते। इसी तरह अगर किसी का कोई अच्छा अमल नज़र आता तो उसकी खुलकर हौसला–अफजाई भी फरमाते। इस तरह तमाम सहाबा–ए–किराम में जान न्योछावर कर देने का एक ऐसा जज़्बा पैदा हुआ जिसने पूरी दुनिया में एक इंकिलाब बरपा कर दिया।

आप (स0अ0व0) के इस तरबियत के अंदाज़ का नतीजा यह हुआ कि अरब के वे बद्दू, जिनकी क़ीमत उस वक्त की सभ्य दुनिया की नज़रों में कुछ न थी बल्कि उनकी हैसियत सिर्फ ऊँट चराने वालों की थी, आपकी निगाह–ए–कीमिया–असर ने उन्हें दुनिया की रहनुमाई का शर्फ़ अता किया और कुछ ही वर्षों में उन्होंने पूरी दुनिया को इल्म–ओ–फज़्ल और इंसानियत से मालामाल कर दिया।

हक़ीक़त में यह वह सालेह (नेक) इंसानी समाज था जो दुनिया के पटल पर नबवी तरबियत का शाहकार (उत्कृष्ट कृति) बनकर उभरा। उसके पास आधुनिक साधन या जंग के हथियार या सिनअत–ओ–हरफत (उद्योग–धंधे) का वह वसी निज़ाम नहीं था जिस पर तरक़्क़ी याफ़्ता (विकसित) कौमों को नाज़ होता है। हालांकि उसके पास वे नेक और तामीरी मकसद ज़रूर थे जिनके ज़रिए दुनिया को बल्कि पूरी कायनात को जीतने का फर्ज अदा किया जा सकता था। यही वजह है कि उसने जिंदगी के हर शोबे (क्षेत्र) में अपनी लियाक़त, सलाहियत और अपनी फर्ज–शनासी व एहसास–ए–ज़िम्मेदारी का बेहतरीन सबूत पेश किया।

फ़ैज़ाने नुबुव्वत से सैराब यह फ़र्द जब अक़वामे आलम की हुक्मरानी पर मामूर हुआ तो अक़रबा परवरी, ज़ुल्म, बदउनवानी, तअय्युश पसंदी और ग़फ़लत के बजाय उसने अद्ल व इंसाफ़, मुसावाते इंसानी, ईसार व क़ुर्बानी और एहसासे ज़िम्मेदारी की ऐसी मुहय्यिरुल–अक़्ल मिसालें पेश कीं जिनकी नज़ीर दुनियाए इंसानियत पेश करने से क़ासिर है। यही फ़र्द जब तिजारत के मैदान में क़दमरंजाँ हुआ तो उसने अमानतदारी, साफ़गोई और ख़ैरख़्वाही का ऐसा नमूना पेश किया जो दुनिया की दूसरी क़ौमों के लिए एक क़ाबिले तक़लीद उस्वा था। यही फ़र्द जब आइली और ख़ानगी ज़िंदगी में पहुँचा तो उसने मुहब्बत व मवद्दत और हर एक के हुक़ूक़ की अदायगी में मिसाल क़ायम कर दी।

म्दरसा–ए–नुबूव्वत का तरबियत याफ़्ता यह शाहकार फ़र्द अपने अंदर ऐसी तासीर रखता था कि उसने बाद की सदियों में भी ऐसे क़ीमती जवाहर पैदा किये जिनके अंदर इंसानियत व अख़्लाक़, ख़ुदा शनासी और इंसान दोस्ती का मिज़ाज था और उनकी ज़िंदगियाँ उस्वा–ए–हसना (स0अ0व0) का परतो मालूम होती थीं।

अफ़सोस की बात है कि सिनअती इंक़िलाब के इस दौर में आज हमें उस लाज़वाल मदरसा–ए नुबुव्वत के चश्मा–ए–साफ़ी से सैराब वह फ़ुज़ला और तरबियत याफ़्ता नज़र नहीं आते जिनकी निगाहें माद्दियत की ज़र्क़–बरक़ से ख़ीरा न हों, जिनके अंदर ख़ुदातरसी व ख़ुदातलबी और इंसानदोस्ती का ज़ौक़ हो, जिनके अंदर ज़राए और मक़ासिद के दरमियान तमीज़ का शऊर हो। आज के इस मशीनी दौर में हमें एक ऐसा इंसानी समाज नज़र आता है जो ईमान व यक़ीन की दौलत से ख़ाली, इंसानी ज़मीर से आरी, ख़ुलूस व मुहब्बत के तक़ाज़ों से नाआशना और इंसानियत के शरफ़ व एहतराम से तहीदामन है। न उसके अंदर ख़ालिक़–ए–हक़ीक़ी की मारिफ़त का जज़्बा है और न ही अमानतदारी का एहसास। फिर यह कैसे मुमकिन है कि आज का तालीम याफ़्ता इंसान इंसानियत के भँवर में फँसी कश्ती को साहिले मुराद से हमकिनार कर सके?! सच तो यह है कि अम्न व इंसानियत के अलमबरदार जदीद दौर में फ़िक्री क़ियादत करने और इंसानी मुआशरे की ज़िम्मेदारियाँ सँभालने में हर महाज़ पर बुरी तरह नाकाम साबित हुए हैं।

वाक़्या यह है कि दुनिया आज भी उसी दर की मोहताज है जिसने उसे एक मिसाली फ़र्द दिया, इंसानियत का दर्द और ज़ख़्म का मरहम दिया और वह बुनियादें फ़राहम कीं जिन पर इंसानियत की फ़लकबोस इमारत तामीर की जा सके।

दाई–ए–इस्लाम के उपदेश

दो अहम चीज़ें:

फ़रमाया: "दो चीज़ों से रिफ़अत हासिल होती है और इंसान ख़ुदा तआला का मुक़र्रब बंदा बन जाता है; ख़िदमत और मशक़्क़त यानी आदमी अल्लाह वालों की ख़िदमत करे फिर उस ख़िदमत में जो मशक़्क़त हो, उसे भी बर्दाश्त करे और सारे आमाल में सिर्फ़ अल्लाह की रज़ा मक़सूद रखे।"

इख़्लास की बरकत:

फ़रमाया: "अगर किसी साहिब–ए–ईमान के हर अमल में इख़्लास शामिल–ए–हाल हो तो उसके तमाम आमाल बाइस–ए–निजात व रिफ़अत होंगे। इख़्लास की बिना पर किया जाने वाला थोड़ा सा अमल भी बहुत ज़्यादा मोअस्सिर, नफ़ा–बख़्श और तरक़्क़ी का बाइस होता है।"

इख़्लास की अलामत:

फ़रमाया: "कामिल इख़्लास की अलामत यह है कि अगर किसी आदमी की बुराई की जाए या फिर उसकी तारीफ़ की जाए तो उस पर कोई ख़ास असर न पड़े। इसलिए कि अगर आदमी में इख़्लास होगा और जब उसकी बुराई की जाएगी तो वह यह सोचेगा कि मैं तो उसके कहने से ज़्यादा बुरा हूँ, फिर उसकी तबीयत पर ज़्यादा असर नहीं पड़ेगा, इसी तरह जब उसकी तारीफ़ की जाएगी तो वह सोचेगा कि यह सब तो महज़ अल्लाह तआला का फ़ज़्ल है, फिर वह इतराएगा नहीं।"

तहारत के फ़वाइद:

फ़रमाया: "शरीअत–ए–मुतहहरा में तहारत का ख़ास तौर पर हुक्म है और उसको निस्फ़ ईमान बताया गया है, सच्ची बात यह है कि तहारत के ग़ैर–मामूली फ़वाइद हैं और यह इंसानी तबीयत का एक बुनियादी तक़ाज़ा भी है। अगर आदमी रूहानी तौर पर बुलंद मक़ाम हासिल करना चाहता है तो उसके लिए तहारत का होना ज़रूरी है। जब तहारत होती है तो ग़ैर–मामूली उरूज हासिल होता है और इबादात में दिल लगता है।"

उस्वा–ए–नबवी (स०अ०व०):

फ़रमाया: "सीरत–ए–नबवी (स०अ०व०)" के मुताला से अंदाज़ा होता है कि आप (स०अ०व०) ने दावत की राह में ग़ैर–मामूली मशक़्क़तें बर्दाश्त कीं, यहाँ तक कि अपना महबूब वतन भी छोड़कर हिजरत करने पर मजबूर होना पड़ा और आप (स०अ०व०) ने इन हालात से नबर्द–आज़मा होने के लिए निहायत हिकमत व मसलहत के साथ दुनियावी असबाब को भी इख़्तियार किया ताकि उम्मत–ए–मुस्लिमा को एक नमूना मिल सके कि इसी तरह हिम्मत व सब्र और तवक्कुल इलल्लाह के साथ दीन के काम में लगे रहना है।"

दो रास्ते:

फ़रमाया: "इस उम्मत के सामने दो रास्ते बयान किए गए हैं; एक हुदा (सरापा हिदायत) और दूसरे हवा (सरापा ज़लालत)।

हुज़ूर (स०अ०व०) साहिब–ए–हुदा थे, साहिब–ए–हवा नहीं थे, इरशाद–ए–इलाही है:

وَمَا يَنْطِقُ عَنِ الْهَوَىٰ إِنْ هُوَ إِلَّا وَحْيٌ يُوحَىٰ

"और वह ख़्वाहिश से नहीं कहते, वह तो सिर्फ़ वही है जो उन पर की जाती है।"

आप (स०अ०व०) की मुहब्बत का तक़ाज़ा यह है कि हम भी उसी हुदा (सरापा हिदायत) के रास्ते पर चलकर महबूब–ए–इलाही बनने की कोशिश करें।"

हज़रत मौलाना सैय्यद अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 09 ❊ September 2026 ❊ Volume: 18

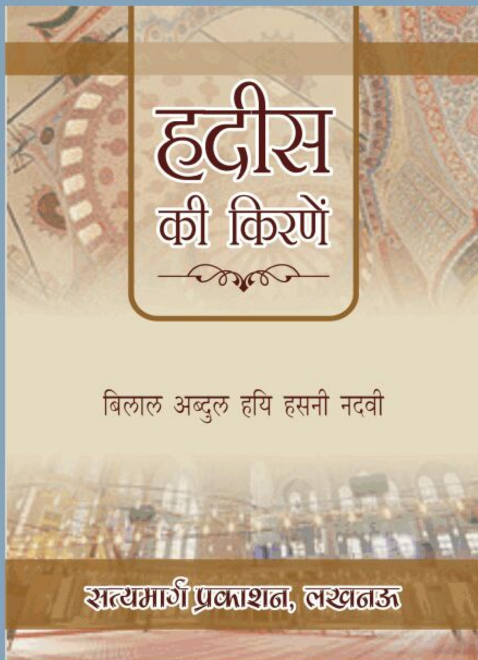

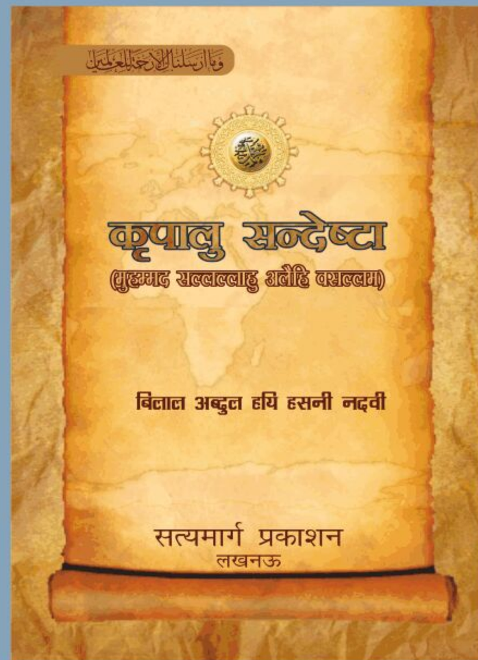

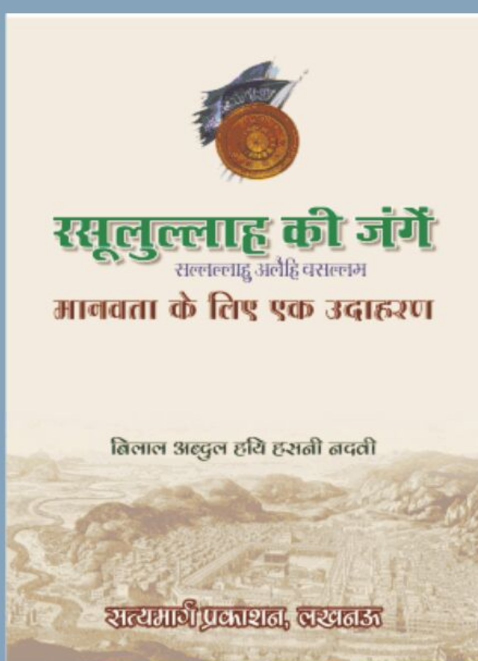

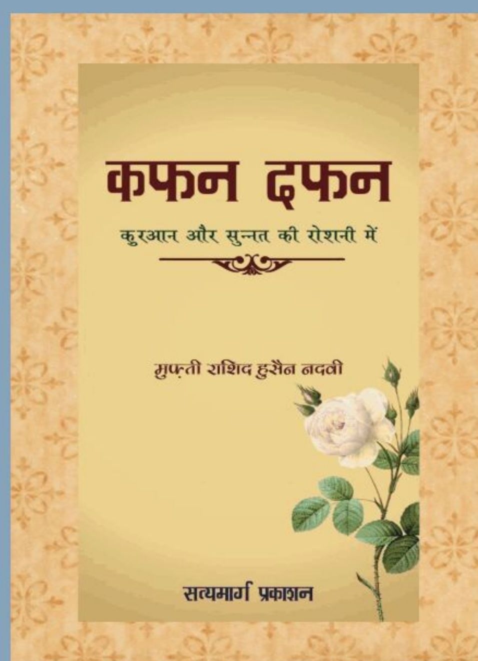

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak
Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.